सरल

जैन-रामायण

(द्वितीय-काण्ड)

रचयिता—

अध्यात्मरत्न व्याख्यानभूषण

ब्र० कस्तूरचन्द नायक

जवाहरगंज, जबलपुर ।

प्रकाशकः—

ब्र० नायकजी के ही चिरजीवी बालक

जवाहरगंज, जबलपुर ।

प्रथमवार १०००

वीर निर्वाण सम्वत्—२४७८

न्योछावर मूल्य ४) रु०

आवश्यकीय सूचना—

हर्ष है कि "सरल जैन रामायण" का तृतीयकांड शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। जिसमें लक्ष्मण को सूर्यहास खडग की प्राप्ति, सीताहरण आदि सुन्दर २ प्रकरण चित्रित किए गए हैं, शीघ्र प्रकाशित होगा।

मुद्रक:—
"नीरज" जैन,
चन्द्रकांता प्रिंटिंग वर्क्स
गांधीगंज, जबलपुर।

* प्रस्तावना *

चला लक्ष्मी, चलः प्राणा, चले च जीवित मन्दिरे ।
चलाचले च संसारं, धर्म मेकोऽपि निश्चलः ॥

अर्थात्—लक्ष्मी चंचल, प्राण चंचल, जीवन चंचल, यहां तक कि संसार ही चंचल है, केवल एक धर्म ही निश्चल है विज्ञ-जनों ने संसार को असार कहा, फिर भी इसमें लिप्त प्राणियों की कमी नहीं। यहां तक कि भौतिकवादियों ने इस असार संसार को सौन्दर्यमय बनाने के लिये अथक परिश्रम किया वर्तमान मानव समाज इतना मायावी हो रहा है कि जिसका पार नहीं। चाहे जो कुछ हो परन्तु जहां माया, ममता, मद, मत्सर, राग, द्वेषादि ही "सत्यं शिवं सुन्दरमं" की उपाधि को प्राप्त कर चुके, वहां आत्मीयसुख और शान्ति की प्राप्ति होना नितान्त असंभव है। मानव भौतिकवाद की चकाचौंध में अपने आप को भूल गया अर्थात् अपने अन्तरङ्ग विलक्षण आत्म सौन्दर्य को भूला। जिससे वास्तविक आत्मीयसुख को प्राप्त न कर सका। जिस जिज्ञासु को उस आत्म सौन्दर्य का ज्ञान हुवा, उसने ही आत्मा को अमर माना, और उसीने सत्, चित्, आनन्द का सुख पहिचाना, उत्तरोत्तर वृद्धि करके आवागमन से मुक्त हो, अविनश्वर पद को प्राप्त किया।

इस अध्यात्मवाद के विषें मानव का जैसा जैसा दृढ़ विश्वास होता जावे, तैसा तैसा आत्मज्योति की उन्नति पर निर्भर होता जाता है। पुनः उसे अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये बड़े बड़े आत्मतत्व दर्शियों का समागम प्राप्त कर स्वयं अध्यात्मवाद पर अनेकानेक ग्रंथ निर्माण करता है। वर्तमान

देश, काल के अनुसार हिन्दी का प्रसार हुआ, अतः अनभिज्ञ जनता को उपरोक्त भाषा का ज्ञान न होने से अध्यात्मवाद से वंचित रहना पड़ा इसी क्षति को देख, धर्मप्राण महामान्य पूज्य वर्णीजी को हार्दिक वेदना हुई, अतः वर्तमान मानव समाज की अध्यात्मिक उन्नति करने के लिये, धर्मग्रन्थ सरल भाषा में प्रयुक्त किये जांय, ऐसा सुझाव सुझाया। जिसकी पूर्ति करने के लिये श्रीयुत् अध्यात्मरत्न, व्याख्यानभूषण, ब्रह्मचारी नायक जी ने अपना लक्ष्य बनाकर पूज्य गुरुदेव वर्णी जी की भावना को साकार कर दिखाया। आधुनिक ढंग की सरल भाषा में लिखा हुवा यह धर्मग्रन्थ "सरल जैन रामायण" के नाम से जन-साधारण के हितार्थ रचा गया है। इसका चित्रण अनोखा और मौलिक भाव प्रदर्शन करानेवाला एवं सरल तथा हितकारक है।

इसमें सन्देह नहीं, कि पूज्य ब्रह्मचारी नायक जी ने उक्त ग्रन्थ सृजन किया, जिससे मानवधर्म की, एक बड़ी भारी क्षति की पूर्ति हुई, इस महान् उपकार का ऋणी, मानव समाज सदा के लिये रहेगा।

मानव समाज सेवी—

सिंघई मोहनचन्द्र जैन

मु० पो० कैमोरी, जबलपुर।

॥ प्रकाशक द्वारा श्रद्धांजलि समर्पण ॥

गार्हस्थ्य जीवन को व्यतीत करते हुये, भीषण संघर्षमय काल यापन कर, हमारे प्रातःस्मरणीय पूज्य माता पिता ने, हम सब बालकों की रक्षा की है उस विवरण को श्रवण कर हृदयंगम करते हैं, तदि हम सब बालकों की आत्मायें आनंद से विभोरित हो, नाचने लगती हैं।

हे जीवनाधार प्रतिपालक—वर्तमान संसार का प्रवाह अनेकानेक असुविधावों के कारण, चारित्र से पतनमार्ग की ओर बड़ी तेजी से गिरता जा रहा है।

ऐसे भीषण द्वंदमय समय पर भी आपने, संसार के परमोद्धारक १००८ श्री महावीरस्वामी वीतराग परमभट्टारक अर्हतदेव द्वारा प्रतिपादित, अहिन्सामयी धर्म का शरण लेय, आदर्श नैष्ठिक श्रावक ब्रह्मचारीय पदारोहण कर, हम सब बालकों का मुखोज्वल एवं धवलयश का पात्र बनाया है। उसकी कथंचित् पूर्ति हम सब बालक, आपके कर कमलों द्वारा रचा गया "सरल जैन रामायण" द्वितीयकाण्ड प्रकाशन कराकर अपना सौभाग्य समझते हैं जो कि जन-साधारण के हितार्थ भारत में अनुपमेय सामग्री प्रस्तुत रहे।

आपके उपकार से सदा ऋणी रहनेवाले
आपके ही चिरजीवी बालक—

गुलाबचन्द, नेमीचन्द, मङ्गलचन्द,
निर्मलकुमार एवं कमलकुमार
जवाहरगंज, जबलपुर।

सम्मतियां—

(१)

आशीर्वादात्मक पत्र !

श्रीयुत् महानुभाव ब्रह्मचारी कस्तूरचन्दजी—

आपकी कृति जैन रामायण प्राप्त हुई। इस अवस्था में आपने जो परिश्रम कर, सर्व साधारण का उपकार किया, प्रशंसनीय है। अनुमित होता है कि आत्मा की शक्ति अचिन्त्य है केवल लक्ष्य उस ओर होना चाहिये। विशेष क्या लिखूं—

आपका शुभचिन्तक—
१०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णी,
मलारा, (छतरपुर)।

(२)

आशीर्वाद !

माघ कृष्णा दशमी, मंगलवार,

तारीख २२-१-१९५२

आदरणीय १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज द्वारा सुझाई गई जैन रामायण कृति की पूर्ति ब्रह्मचारी कस्तूरचन्दजी नायक जबलपुर वालों ने पांच वर्ष अथक परिश्रम करके प्रस्तुत की।

इसके प्रथम काण्ड का मैंने भली भांति अध्ययन किया एवं श्रवण कर हृदय गद्‌गद् हुआ। यह सरल, तथा रोचक

भी है अत सर्व जीवों के हितार्थ इसका अत्यधिक प्रचार किया जावे, ऐसी मेरी परम पुनीत सम्यक भावना है।

द: ब्र० रामचन्द सर्वजीव हितचिन्तक—

द: ब्र० मूलचन्द १०५ क्षुल्लक क्षेमसागर

श्री दि० जै० पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र,
पटेरियाजी (गढ़ाकोटा)।

(३)

तारीख २२-१-५२

पूज्य ब्रह्मचारी पं० कस्तूरचन्दजी नायक की जैन रामायण कृति को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आपका यह प्रयास स्तुत्य है। श्रीरामचन्द्र का पूर्ण चरित्र चार काण्डों में प्रकाशित होगा। हर्ष है कि ब्रह्मचारीजी पूर्ण प्रकाशनार्थ सुदृढ़ संकल्प हैं। आशा है कि जनता, इस अनुपमेय नूतन सरल, सरस एवं भावपूर्ण रचना का स्वागत करेगी।

द: दयाचन्द जैन शास्त्री
श्री० भा० व० दि० जैन संघ,
चौरासी, मथुरा।

द: भैयालाल जैन (भजनासागर)
चौरासी, मथुरा।

द: ख्यालीराम जैन,
लश्कर, (ग्वालियर)।

(४)

तारीख २२-१-१९५२

पूज्य ब्रह्मचारी पं० कस्तूरचन्दजी नायक की जैन रामायण कृति देख आनन्द से हृदय मुग्ध हो गया। यह सरल, सरस एवं कल्याणकारी है। श्रीरामचरित्रमानस चार काण्डों में मुद्रित होगा।

ब्रह्मचारीजी का संकल्प सफल हो, हम सबकी यही मनोकामना है।

द: चौ० दुलीचन्द | गढ़ाकोटा समाज की ओर से—

द: खूबचन्द बैसाखिया | द: सेठ गिरधारीलाल

मंत्री—

श्री अतिशयक्षेत्र पटेरियाजी,

मेला कुमेटी।

(५)

माघ कृष्णा ११ बुधवार

तारीख २३-१-१९५२

पूज्य ब्रह्मचारी कस्तूरचन्द जी नायक द्वारा रची गई "सरल जैन रामायण" का प्रवचन जैन समाज एवं जैनेतर बन्धुवों के समक्ष कराया गया। जिसको श्रवण कर, हर्षित हो सर्व उपस्थित जनसमूह ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। इसका विवेचन इतना सुन्दर एवं भावपूर्ण है कि श्रवण या पठन करते ही आत्मा आनंद से विभोर हो जाती, तथा भावना करती है कि इसका अधिक से अधिक प्रचार हो।

सर्व उपस्थित बन्धुवों की ओर से—

सेठ माणिकचन्द जैन 'निर्मल'

बासा तारखेड़ा (दमोह)

(६)

तारीख २७-१-५२

अभी तक हिन्दी साहित्य में केवल श्री वाल्मीक या श्री तुलसीदास कृत रामायण का प्रसार है ये केवल वैदिक धर्म की ही मान्यताओं पर आधारित हैं। पर जैन विचारधारा के अनुसार श्री रामचन्द्र को आदर्श महापुरुष, सीता को शीलवन्ती महिला रत्न एवं रावण को एक विद्वान लोकोत्तर विभूति का धारक विद्याधर राक्षसवंशी मनुष्य वर्णित किया गया है। यह एक भारत के लिये नयी वस्तु प्रतिपादित हुई। हम ब्रह्मचारी कस्तूरचन्द जी नायक के इस प्रयास की अत्यन्त प्रशंसा करते हैं। साथ ही साथ मनोकामना करते हैं कि हिन्दी जगत में यह 'सरल जैन रामायण' व्यापक प्रसार पावे।

भूपतिसिंह ठाकुर बी० ए०

पाटन

(७)

तारीख २७-१-५२

अध्यात्मरत्न, व्याख्यान भूषण, ब्रह्मचारी पं० कस्तूरचंद जी नायक जबलपुर निवासी द्वारा रचित "सरल जैन रामायण" का प्रस्तुतग्रन्थ में भाव सरल, सरस, स्पष्ट एवं

हृदयग्राही है। सम्पूर्ण ग्रन्थ छपकर तैयार होने पर अवश्य कल्याणकारी सिद्ध होगा।

द: पं० चतुर्भुजप्रसाद शास्त्री
(वैद्यराज) पाटन

द: मुहब्बतसिंह दुबे
गाड़ाघाट हाल पाटन

द: ठाकुरप्रसाद (अग्रवाल)
पाटन

द: सरूपचन्द जैन (कटनी)
हाल पाटन

(८)

माघ शुक्ला एकम सं० २००८

तारीख २७ जनवरी ५२

अध्यात्मरत्न, व्याख्यानभूषण, श्री कस्तूरचन्द जी नायक ने "सरल जैन रामायण" ऐसे महाकाव्य को रचकर अत्यधिक जन-साधारण का उपकार किया है जोकि हिन्दी के भन्डार को एक अमूल्य निधि ही प्राप्त हुई।

अब आवश्यक्ता है उस पुण्यात्मा जीव की, जोकि प्रथम भाग के दानदाता का प्रशंसनीय अनुकरण कर अपनी दानशीलता का परिचय देय। श्री अरहन्तदेव से प्रार्थना है कि श्री ब्रह्मचारी नायक जी चिरायु हों। जिससे जैन समाज ही नहीं, अपितु भारतीय संस्कृति का ऐसे अनुपम सुन्दर साहित्य द्वारा कल्याण कर सकें। "सरल जैन रामायण" का प्रचार,

घर-घर में हो, जन-जन में हो और इससे अत्यधिक लाभ उठाया जाय।

पाटन जैन समाज की ओर से—

समाज सेवक—सिंघई हुकमचन्द सांधेलीय

मंत्री—अतिशय क्षेत्र कोनी जी (पाटन)

(६)

माघ सुदी १ सं० २००८

तारीख २७-१-५२

श्रद्धेय ब्रह्मचारी कस्तूरचंद जी नायक ने जैन समाज में हमेशा खटकने वाली एक आवश्यक क्षति की पूर्ति कर दी, जिसके प्रति किसी भी प्रकार का उदाहरण देना मानों सूर्य को दीपक दिखाना है।

जिस प्रकार पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय १०५ क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद वर्णी की जीवनगाथा से, हम सबको एक अदम्यप्रेरणा एवं ध्येय निष्ठा की शिक्षा प्राप्त होती है। उसी प्रकार यह ध्रुव सत्य है कि ब्रह्मचारी श्री नायक जी की इस अद्वितीय रचना से अत्यधिक अध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त होकर जन-साधारण का कल्याण हो सकता है।

श्री नायक जी का प्रयास श्री गोस्वामी तुलसीदास जी के श्रीरामचरित्रमानस के समान, घर-घर में व्याप्त हो, ऐसी श्री वीर प्रभू से प्रार्थना है।

सि० मोतीलाल रतनचन्द जैन

पाटन

(१०)

ता० २६-१-५२

यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि ब्रह्मचारी कस्तूरचन्द जी नायक ने "सरल जैन रानायण" प्रथमकाण्ड पद्य भाषा में रचकर अतिसराहनीय कार्य किया। आपकी कृति देखकर अनुमान होता है कि आपने परिश्रम अत्यधिक उठाया। जैन दर्शन में भी "जैन रामायण" एक अद्वितीय स्थान रखती है। जिस प्रकार तुलसीदास कृत रामायण भारतवर्ष में लोकोपकारी सिद्ध हुई, वैसे ही "जैन रामायण" भी सर्व जन-साधरण के लिये उपकारी हो, यह मेरी अन्तरङ्ग अभिलाषा है।

रतनचन्द गोलछा

(सेठ रतनचन्दजी गोलछा श्वेताम्बर जैन,

सदर बजार जबलपुर)

(११)

ता० २६-१-५२

श्रमण संस्कृति का यथोचित प्रचार, वर्तमान युग का प्रमुख भाग है। एतदर्थ उक्त उद्देश्य के हेतु ब्रह्मचारी नायकजी ने "जैन रामायण" चारों काण्डों में रचकर, जैन साहित्य कोष में विशेष निधी प्रदान की है। आपका प्रयास अभिनंदनीय वा स्तुत्य है।

द० कपूरचन्द चौधरी

(रायबहादुर)

जबलपुर।

(१२)

ब्रह्मचारी कस्तूरचंदजी नायक ने भगवान राम के चरित्र पर जैन-रामायण रची है। नायकजीकृत व्याख्या सुन्दर और हृदयग्राहिणी लगी। अनेकों प्रसंग ऐसे मिलेंगे जो भक्तों के लिये रोचक एवं भक्ति रस में डूबे चित्रण किये गये हैं। ब्रह्मचारीजी का अथक परिश्रम और लगन प्रशंसनीय है। इसे पढ़कर अन्य काण्डों के प्रकाशन की भी पाठकगण उत्कंठा से प्रतीक्षा करेंगे। ३५० पृष्ठ के इस ग्रन्थ की छपाई, सफाई भी बहुत आकर्षक है।

ग्रन्थ का जनसाधारण के घर-घर में प्रचार हो, यह शुभकामना है।

जगदीशप्रसाद व्यास
(एम. ए. बी. टी. पी. ई. एस.)
प्रोफेसर प्रांतीय शिक्षण महाविद्यालय
जबलपुर

३१-१-५२

॥ श्री जिनाय नमः ॥

✻ विषयानुक्रमणिका ✻

पत्र नं०

दशरथ को वैराग्य उत्पन्न होना, केकई द्वारा वरदान का यांचन।

श्री रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता का विदेशगमन, दशरथ का दीक्षाग्रहण, भरत का राजपद भोग।

श्री रामचन्द्र, लक्ष्मणकृत, वज्रकर्णोपकार।

म्लेच्छाधिपति से, रामचन्द्र, लक्ष्मण द्वारा, बालखिल्य का बंधनमुक्त होना।

कपिल ब्राह्मण का अतिशययुक्त चरित्र।

लक्ष्मण द्वारा, वनमाला का फांसी से मुक्त होना।

महाराजा अतिवीर्य को वैराग्य प्राप्त होना।

अतिवार्य ऋषिराज के दर्शनार्थ, भरत महाराज का आगमन।

शत्रुदमन नृप द्वारा चलाई गई, लक्ष्मण पै पंच शक्तियों का विफल होने पर, जितपद्मा से संबंध होना।

श्री रामचंद्र, लक्ष्मण द्वारा, देशभूषण स्वामी का उपसर्ग निवारण।

रामनिवास से पर्वत रामगिरि कहलाया।

श्री रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता ने मिलकर दण्डकवन में युगल चारणमुनी को आहार दान दिया, ताही समय जटायु पक्षी का सम्मिलन श्री रामचन्द्र, लक्ष्मण और जनकदुलारी का दण्डकवन वास।

|| श्रीजिनाय नमः ||

|| शब्दार्थ या भावार्थ ||

पत्र नं०

२ भोगभूमिया = जहां पर युगलिया, स्त्री और पुरुष उत्पन्न हों, जिनका मरण भी एक साथ हो। कल्पवृक्ष द्वारा सर्व सुख सामग्री प्राप्त कर जीवन पर्यंत सुख ही सुख भोगें।

„ कर्मभूमि = जहां पर जीव स्वयं पुरुषार्थ द्वारा पुण्य, पाप का बंधकर चारों गति का पात्र बनें। तथा दोनों को मेंटकर मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता प्रगट करे।

„ सुखद = सुख का देनेवाला।

„ पूर्व = निश्चित काल के प्रमाण की संज्ञा।

३ विभाव = निमित्ताधीन से, स्वयं द्रव्य में विकृत परिणमन होना।

पत्र नं०

„ केवलज्ञान = पूर्ण ज्ञान शक्ति का विकसित होना, निरावरण अनन्त ज्ञान, सम्पूर्ण चराचर वस्तुओं का जानने वाला ज्ञान।

„ नशैंअघाती = प्रतिजीवी गुणों के घात करने वाले कर्म अभाव होवें।

„ जग का आवागमन मिटाये = संसार का कारण भूत जन्म और मरण को सदा के लिये मिटा देना।

४ परिणय = विवाह या व्याह।

„ विराग = आत्म स्वरूप की रुचि जाग्रत होने पर अन्य वस्तुओं से राग हट जाना। राग रहित अवस्था।

„ भुजंग = सर्प।

५ हरि = इन्द्र नामधारी विद्याधरों का राजा।

६ इकयोजन=चार कोश।
,, केहरि=सिंह।
७ हुमक=उचक।
,, प्रयोजनभूत=मतलब सारूँ।
,, जंघाचारण ऋद्धि=जंघा पर हाथ रखते ही आकाश में गमन की शक्ति, ऋद्धि के बल पर प्राप्त हो जावे।
,, मोचनैं=छुटकारा पानें।
८ मुदित=हर्षित।
,, सुधा = अमृत या अमिय तथा पीयूष।
चौकसी=सावधानी।
रिप=क्रोध या गुस्सा।
ईर्यापथ=मार्ग को सोधता हुआ दया सहित।
साली=स्वस्त्री की छोटी बहिन या (हृदय में चुभने वाली)।
जगरमणी=संसारीय स्त्री।
शिवरमणी=आत्मीय स्व-परिणति।
१० ज्येष्ठ सुत=बड़ा पुत्र।
,, सुकृत का पुञ्ज=पुण्य परिणाम का धारी।
११ पोट=भार की गठरी।
,, आत्मरमणता = निज स्वरूप में लीन होना।
,, शीत परीषह=कर्मोदय से, कालकृत, चेतन या अचेतन कृत उपसर्ग, समभाव से सहन करना।
,, चक्रवर्तिपद = छह खण्ड विभूति का स्वामी, चक्रेश्वर
,, तीर्थेशपद=जो स्वयं संसार के दुःख से छूटै और संसार के दुःखी प्राणियों का दुःख छुड़ावै। अर्थात् संसार समुद्र से आप तरै और अन्य को तारै।
१२ श्रवत=सुनते ही।
,, तरणि=नौका।
,, शिवपुर = अनन्तकाल तक अविनश्वर आनन्द दायक स्थान।
,, रम्यता=सुन्दरता।
१३ सुरलौकान्तिक = ऐसे देव,

जिनके लोक का अन्त आ गया, एकाभवतारी।

„ द्वादशभावन=बारह भावना अनित्यादि।

„ शिविका=पालकी।

„ सुभग=सुन्दर।

„ ताण्डवनृत्य=क्षण में पृथ्वी, क्षण में आकाश, क्षण में दृश्य, क्षण में अदृश्य, ऐसा अद्भुत नृत्य।

„ काललब्धि=जिस समय पर कार्य सिद्ध हो, ऐसे समय की प्राप्ति।

१४ खगपती=विद्याधर राजा।

१६ जाये=उत्पन्न करै।

„ भूमिज=भूमिगोचरीमनुष्य।

„ सिन्धु मध्य=समुद्र के वीच।

„ मूलोच्छेद=जड़ से नाश।

१७ वृत्त=स्माचार।

„ अन=दूसरे।

„ गवने=गमन किया।

१९ सचिव=मंत्री।

„ सुहृद=मित्र।

„ गोपकें=छिपाकें।

२० सरुज अवस्था=रोग दशा।

„ लुनो=काटो।

२१ विज्ञ=चतुर।

„ मृगेन्द्र=सिंह।

२२ संकल्पी=जान-बूझकर।

२३ दुहित=पुत्री।

२४ शशि=चन्द्रमा।

„ विरद=यश या कीर्ति।

„ मांझ=बीच में।

२५ एका केहरिसम=अकेला सिंह समान।

२६ दम्पति=वर और वधु।

„ विश्व=सर्व।

„ खरतर=तीक्ष्ण।

„ अगणित अरिगण=वैरिन के समूह की गणना नहीं।

२७ बाराबाट=छिन्न-भिन्न।

„ अहिंजिम=सर्प जैसे।

„ वात्सल्य=धर्म प्रेम।

२९ विजयश्रिया=विजयलक्ष्मी।

३० बहोड़ा=लौटा लिया।

३१ रवि=सूर्य।

२ मुखवारिज=मुखकमल।

,, पद्म=कमल।

,, विधु विलोक=चन्द्रमा को देख।

,, वारिधि=समुद्र।

,, परिजन पुरजन = कुटुम्बी और नगर के मनुष्य।

,, यांचकन=मांगने वाले।

,, हर, हलधर अरु प्रतिहरी= नारायण, बलभद्र और प्रति-नारायण।

,, निशा सिरानी=रात्रि बीती।

,, समुद्रान्त अवनी अवलोकै= समुद्र पर्यंत पृथ्वी को देखै।

३ शशि ढिग रोहिणि=चंद्रमा के पास उसकी पट्ट देवी रोहिणि नाम की।

,, हरि ढिग शचि = इन्द्र के पास इन्द्राणी।

,, गात = शरीर या काया अथवा देह तथा तन।

४ विधिरेख=कर्म की लिखी।

,, बंध निकांचित = ऐसा बंध जिसमें रंच भी घट, बढ़ या बदल ना सके जैसे का तैसा फल देय।

,, स्वर्ग=पुण्य फल भोगने का सुखमयी विशेष स्थान।

,, नर्क=पाप फल भोगने का दुखमयी विशेष स्थान।

३५ सब गुण कला निवास = सर्व गुण और कलाओं कर सम्पन्न।

,, समतर=बराबरी।

,, निपुण=चतुर।

,, निहाल=सर्व सुखकर पूरित।

६६ प्रसव रक्षणी = गर्भ की रक्षा करने वाली।

,, तात=पिता।

३७ विहँसा = खिलखिला कर हँसा।

,, शठता=मूर्खता।

,, रंक, राव=निर्धनी, राजा।

,, विरथा कोप्या = वृथा ही क्रोधित हुआ।

,, मोरी की जालि मँह=नाली की जालि विषें।

,, पावक=अग्नि।

,, बयार=हवा।

,, तीखी=तेज।

,, उपादान=अन्तरङ्ग,मूलभूत।

३६ हनहौं=मारूँगा।

४१ पय रक्षन मार्जारी पोषी = दूध की रक्षा के लिये बिल्ली को राखी।

४२ रज=धूल।

,, सुरतरु लुनें कनक जिम बोवै=कल्पवृक्ष को काटकर धतूरे का वृक्ष लगावै।

,, उपल=पाथर।

,, भवउदधि = सन्सार रूपी समुद्र।

,, तमभागा = अन्धकार न ठहर सका।

४३ भ्रङ्ग=भौंरा।

४४ मूष छिपै तल शैल = पर्वत के नीचे चूहा जाय छिपै।

,, अछत=मौजूदगी।

,, आश्वासत = धीरज देता हुआ।

,, दलपति=सेनापति।

४५ आदेश=हुकम।

४७ मातुल=मामा।

,, मारगश्रम=राह की पीड़ा।

,, भ्रात भगिनि=भाई बहिन।

,, सरकती=टलती।

४८ भवनत्रिक=भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी देवों की संज्ञा।

४६ मर्दन=मसल करके।

,, अद्य=अब आज।

,, असह सन्ताप = ना सहा जाय ऐसा दुःख।

,, शिशुवध=बालक की हत्या।

,, महाअधम=महान पाप।

,, द्रुत=जल्दी या शीघ्र।

५० मंजुलवच=सुन्दर वचन।

,, खगप=विद्याधरों का राजा।

,, गगन पतत = आकाश से गिरता हुआ।

,, विद्युत=बिजली।

,, नभ से पतत मही पै = आकाश से गिरता पृथ्वी पै।

५१ अनुपमेय = जिसकी उपमा नहीं।

" विपुल पुण्य = सातिशय-पुण्य ।

" गूढ़ गर्भ = छिपा हुआ गर्भ, जानने में न आया ।

" अपरिमित = जिसका प्रमाण नहीं ।

२ आक्रन्दन = अत्यन्त विलाप या पुकार कर रोना ।

" लोचन = नेत्र ।

" नद = नदी ।

" घला = लगा ।

३ विहूनें = फीके था नीरस ।

" हिम उपचार = शीतल पदार्थों का सेवन ।

" तनुज = जाया हुआ बालक ।

" मिन्तर = मित्र ।

५ अम्बर = आकाश या (वस्त्र) ।

६ वदन = मुख या (शरीर ।

७ मार्तंड = सूर्य ।

८ निशिचर निकर = म्लेच्छ या राक्षस समूह ।

" विपद्ग्रस्त = विपति में फँसा हुआ ।

५६ पय उफनाई = दूध की ऊपर उठने की अवस्था ।

" प्रभु = स्वामी या मालिक ।

" घनिष्ट = निकट सम्बन्ध ।

" किशोर = छोटी अवस्था ।

" सहसा = इकदम जल्दी से, बिना विचारे ।

" मुक्ताफल लघु = छोटा मोती ।

६० दारू का गंज = बारूद का ढेर ।

६२ गयंद कदली वन ढाय = हाथी ने केले का वन नाश किया ।

" शार्दूल = सिंह ।

" विकल = चैन नहिं ।

६३ दावाग्नि = दमार ।

" अष्टापद = ऐसा जानवर, जिसके चार पैर नीचे और चार पैर ऊपर, महा भयानक, जिससे सिंह भी भागे ।

६४ आयस = आज्ञा या हुकुम ।

" गायन वादन = गाना बजाना ।

" नादो बिरदो = फूलो फलो ऐसा अशीप का वचन ।

६५ अमान = जिसकी मर्यादा नहीं।

६६ अनुपम सुषमा सीम = जिसकी उपमा नहीं ऐसी हृदय को सुखकारी।

„ भयावह = भयकारी।

„ आरसी = दर्पण।

„ रुदनी = रोती हुई।

„ टेर = पुकार।

६७ विकट समस्या लख विवश = अजब परिस्थिति देख जबर्दस्ती।

„ छविमँह = रूप बिंब।

„ प्रलय = काल या यमराज तथा नाशक।

„ वार = दांव, चोट जिसके ऊपर हो।

„ अवज्ञो = अवहेलना करी।

„ कर उठाय पुन भूमँह मोचै = हाथ उठाके फिर पृथ्वी पर पटकै।

६८ विषम = अटपटी।

„ सम = एकसी।

„ सखन = मित्रों।

६९ वीणा पाणि = हाथ में वीना लिये हुए।

„ अवनि = पृथ्वी।

„ कामशरहिं = मदन वाण से।

„ अन्तरयामी = अन्तरंग का रहस्य जानने वाले।

„ बिसाहा = मोल ले लिया।

७० सुता दुलारी = प्यारी पुत्री।

„ अनुरूप = मुताबिक।

७१ कुल आन = कुल की मर्यादा।

७२ अश्वभेष = घोड़ा का रूप।

„ मतंग = हाथी।

७३ रहस = भेद।

„ हय = घोड़ा।

७४ रनावँ = कबूल या मंजूर।

७७ वायस = कौवा।

७८ सर = तालाब।

„ शैल = पर्वत।

„ पिञ्जरस्थ पञ्चाननहिं, होत स्वान दुखदाय = पिंजड़े में फँसे सिंह को कूकर भी दुखदाई होता है अर्थात् भोंकता और गुर्राता है।

,, घूक ना भानु पिछानें=उलूक को सूर्य की पहिचान नहीं होती कि कैसा है।

९ द्वन्द = उथल पुथल।

,, सुमन सेज पौढ़े = फूलों की शय्या पर लेटे।

० रीझा = मोहित।

,, भाया = सुहाया।

१ विश्वावीस=निश्चय सेती।

,, नीरा = समीप ।

२ सदन = निवास।

,, कनकयष्टि=सोने की छड़ी।

,, ज्वाल = अग्नि ।

,, समुहाय = सन्मुख आवे।

,, व्याल ज्वाल=सर्पोंका अग्नि उगलना।

,, शिष्ट शिष्य = विनयवान बालक।

३ महिनभ भीमघोररवछाया= पृथ्वी, आकाश विषैं महा-भयानक शब्द छा गया।

,, निनाद = अत्यन्त कठोर शब्द।

,, रिपुहु = वैरीहू ।

८४ विक्रम = पराक्रम।

,, खर आताप=तेज दिपावै।

८६ शठ = मूर्ख ।

८७ वक्र = टेढ़ी ।

,, अस्थि पहारा = हड्डी का पहार।

,, गात = शरीर।

,, चित्र पै वरसा = चित्राम पै पानी गिरने से सौन्दर्यता नष्ट होवै।

,, वेला = घड़ी।

,, काल जलद गर्जन श्रवत = यमराज रूपी मेह की गर्जना सुनते ही।

,, देशना = उपदेश।

,, असत = झूँठ।

८८ दामिनवत = विजली के समान।

,, विषधर = सर्प ।

,, चतुष्टय = द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव।

८९ विपिन = जंगल।

„ उताले = जल्दी से।

६० भाव, द्रव्य, नो कर्म का = भाव कर्म=मोह, राग और द्वेप का परिणाम। द्रव्य-कर्म = ज्ञानावर्णादि अष्ट कर्म। नो कर्म=शरीरादि।

„ सोपान = सीढ़ी।

„ आननवारिज = मुख रूपी कमल।

„ भव्य भ्रङ्ग = भव्यपणारूपी भौंरा।

६१ पंकज = कमल।

६३ जातिस्मरण = पूर्व भव भवान्तर का ज्ञान स्मरण होना।

६५ आभा = कान्ति।

६६ ताता = पिता।

„ अमरपुरी = स्वर्ग।

„ थुति = स्तुति।

„ वर्गयुत = कुटुम्ब सहित।

६७ विस्तृत पूर्व बताव=विस्तार से पहिले बता चुके।

६८ हिय की शल्य = हृदय की फांस, कांटे के समान चुभती हुई।

६६ ताइ=अग्निसम गर्मी।

१०० सहोदर = एक माता के उदर से उत्पन्न हुआ।

„ अजुगत=आश्चर्यकारक।

१०१ स्रवतपय युगलकुच = दोनों स्तनों से दुग्ध झरने लगा।

„ अमित = अमर्यादित।

„ पावसमँह = वर्षा ऋतु के विषे।

„ स्रोत = नीझरने।

१०२ सुरांगना = देवांगना।

१०३ विशाल = बहुत भारी।

१०४ चयकें = पर्याय छांड़कें।

„ मरण समाध = मरण के समय समता हृदय में आना राग, द्वेष के विकल्पों का छूट जाना।

„ संबोधा = सांचा ज्ञान प्राप्त कराया।

„ अबोधा = अज्ञानी।

१०५ भवावली=अनेक पर्यायें।

,, धरणी = पृथ्वी या रचना।

०६ शोकाकुल भुवि दृष्टि निपाती = शोक से आकुलित हो दृष्टि, पृथ्वी की ओर गड़ा दई।

,, अनिमिष पलक न ऊरध आती = विना टिमकार के नेत्रों की पलकें ऊपर की ओर न देखें, ऐसी अवस्था हुई।

,, आननयों निष्प्रभ हुये, जिमि मोती विन आव = मुख, तेज रहित ऐसे हुए जैसे बिना पानी का मोती, आभा रहित।

०७ भई निमग्न अगम दुख-सागर = जिसकी थाह नहीं ऐसे दुखः समुद्र में लीनहुई।

,, शोक अपार छोट हिय गाघर = शोक अपार किन्तु हृदय का पात्र छोटा।

१२ हितप्रद = हित देने वाला।

१३ वर्जंत = रोकत।

,, सतपुत्र = आज्ञाकारी पुत्र।

११४ पुनीत = पवित्र।

,, याहित = इसलिये।

११५ कर्कश महि = कठोर पृथ्वी।

,, विनीता = विनयवान स्त्री।

,, स्वार्थ परायण चित्त कठोरी हृदय की कठोर, अपना मतलव गांठने वाली।

,, कर दइ अनहोनी वरजोरी = जवरन, न्याय और नीति को मेंट अनर बुद्धि कीन्ही।

११६ अनुज = भाई।

,, निष्पृह = विरागी।

,, मूर्छा = ममता।

११६ सत्वर = जल्दी या शीघ्र।

१२० कटिप्रमान = कमर तक।

,, जिनकल्पी = एकाविहारी, परम तपस्वी।

१२२ उरजल = पेट का पानी।

,, जननी = माता।

,, सेत = पुल।

१२३ घनों = प्रबल निमित्त।

१२६ सघनतम = विकट अंध।

,, यूथहिं = झुण्ड।

,, असन = भोजन ।

,, प्रेतभूमि सम भयप्रद भासै =मसान के समान भय देने वाली लागै ।

१२७ पथिक=बटोहीया राहगीर ।

१२८ धोक = नमन ।

,, संवाद = वार्ता ।

,, मृगया = शिकार ।

१२६ संशयकारा = दुविधा कर देने वाला ।

१३० दुर्धरताई = कठिनाई ।

,, कदा = कभी ।

,, अनुकम्पा = दया ।

,, श्रावकवृत = हिंसा, झूंठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पंच पापों का स्थूल रूप से त्याग ।

,, मुनिवृत=उपरोक्त पंच पापों का सर्वथा त्याग ।

१३१ वाहु = हाथ ।

१३४ प्रतिकूल = उल्टा ।

,, घरखोवा = जिनने घर द्वार सब सुख की सामग्री को खो दई ।

१३५ द्वै असि ना रह एक मियानो = दो तलवारें, एक मियान में नहीं रह सकतीं ।

,, संदेश = अभिप्राय ।

,, अरिवृन्द=वैरियों के समूह ।

,, विलम = देर ।

१३७ मुद = हर्ष ।

१३८ भृत्य = सेवक ।

१३६ कृतघ्नी = उपकार को हृदय से भुला देने वाला ।

१४० कृपान = तलवार ।

,, श्यालन सें जिम घिरा वघेरा = जिस प्रकार लड़ईयों से सिंह घिरा हो ।

,, मेरु उड़ावन, वयार चाहै = जिस प्रकार हवा सुमेर को उड़ाना चाहै ।

,, सिन्धु मंथन ज़िम मिल उमगाहै = जिस प्रकार बहुजन मिल करके समुद्र को मथना चाहै ।

१४३ शैल = पर्वत ।

१४४ कृतज्ञता = उपकार मानने वाला ।

१४५ विगत अर्ध निशि = आधी रात व्यतीत हुए।

१४६ जनक नंदिनी = जनक की पुत्री अर्थात् सीता।

१४७ चरज्ञानी = चतुर सेवक।

१४८ संग्राम = युद्ध।

१४९ विपति विदारक = विपत्ति नाशक।

,, सतत शोक सन्तप्त = सदा शोक से व्याप्त।

,, वढ़ा ज्वारभाटा सदृश, हिय लहरैं लहराय = समुद्र में हवा के निमित्त से लहरों का वेग वढ़ता है तिस प्रकार हृदय लहराया।

१५१ कस कस = अत्यन्त तेजी से।

,, क्रूर कुटिल हिंसक निपट = निरदई, मायावी सर्वदा हिंसा के भाव रखने वाले।

१५२ पतत तुपार = तुपार गिरते ही।

,, सत्कृतकर = अच्छा काम कर।

,, गंध विलेपन = सुगन्धादि द्रव्य लगाके।

,, बलिदान = देवता पर मारके चढ़ावें।

१५३ सचिंत = चिन्ता सहित।

,, त्रय भुवि की निधि अजहू पाया = तीन लोक की निधि आज ही पाया।

,, सचिव = मंत्री।

१५४ निर्जल = जल रहित।

,, सलिल = पानी।

,, अहि = सर्प।

१५५ महधृष्टा = महान ढीठ या निर्लज्ज।

,, आंन = मर्यादा।

१५६ अवध्य = नहीं मारने योग्य।

,, तिहुँ भुवि = तीनों लोक।

,, भुजंग = सर्प।

१५७ इन्द्रभवन = इन्द्रमहल।

,, अधमुँची = कुछ खुली, कछुक वन्द।

१५८ सुरी = देवी।

,, किमिच्छक = जो इच्छा होवै।

„ कुबेर = धन से निहाल।

„ दुर्गम = प्रवेश कठिन।

१५६ चतुअनुयोगन = प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग।

„ पाथ = मार्ग।

„ लह = प्राप्त।

„ अपूर्व निधि = पहिले कभी नहीं पाई ऐसी सुखकारी वस्तु।

„ पुरी = नगरी।

१६० जिनवृष = जिनधर्म।

„ जलांजुली = अंजुली से जल देना अर्थात त्याग देना।

„ मोह अन्ध = जिससे सांचा वस्तु स्वरूप न भासने पावै ऐसा हृदय अन्ध।

„ प्रविशे = प्रवेश किया।

१६१ निजकर, असि से, पग को हाने = अपने हाथ, अपनी तलवार से, पांव को काटे दोष कर्म पै धर, सुख माने करतूति आप करै सो लखै नहीं, कर्मकृत गुण दोष समझ सुख दुख मानता है।

„ निर्भरता = आधारता।

„ भेदविवुद्धि = भेद विज्ञान अर्थात् अन्तरङ्ग जीव का निज स्वभाव और परद्रव्य एवं कर्म जन्य स्वभाव को जुदा जुदा करै।

१६२ विद्युतसम = विजली के समान।

„ स्वस्ति = कल्याण हो, आशीर्वाद का शब्द।

१६४ क्षणगत = पल भर में चली गई।

„ क्षीण = हीन।

१६५ रच पच = रमकर लीन होना।

१६६ तऊ कुकृति सुधि उर दहत = तोभी खोटी क्रिया की स्मृति, हृदय को जलाती है।

१६७ आसक्त = मोहित।

१६६ मृतु = मरण।

१७१ सीर = साथ।

१७२ अक्षय = जिसका नाश न हो।

१७४ उदधि = समुद्र ।

„ गर्दभ = गधा ।

„ वेणुवृन्द = बांसन का समूह ।

१७५ पयान = गमन ।

„ विग्रह = लड़ाई ।

„ मसलत = सलाह ।

१७६ हे हितवादिनि = अहो, हित की बात कहने वाली ।

१७७ जिमि निशितम गोपे जलद = जिस प्रकार रात्रि का अन्धकार, मेह को छिपा लेय अर्थात् अन्धकार भी काला और मेह भी काला यातें मेह समझ में न आवै ।

१७८ नूतन = नवीन ।

„ मेल्ही = छांड़ी या ठहराई ।

„ दंभी = पाखंडी ।

१७९ सुसा = खरगोश ।

„ दादुर = मेण्डक ।

„ बोना = छोटे कद का ।

„ कुरंगा = हिरनां ।

१८० अरिगण इमि विदलित किये, यथा सूर्य तम भीर = शत्रु समूह ऐसे नाश किये जैसे सूर्योदय पै अन्ध समूह अर्थात् सूर्योदय के होते ही अन्ध तत्क्षण नाशै ।

„ महनर = महापुरुष ।

„ पराभव = मान मर्दन ।

„ वसुन्धरा = पृथ्वी ।

१८४ हेय = त्यागने योग्य ।

१८५ मितव्ययताई = लाभानुसार, व्यय मर्यादित करना ।

१८७ वंद्य = वन्दन करके ।

१८८ कुगति = खोटी गति अर्थात् नर्क, तिर्यंच गति ।

१८९ अली = भौंरा ।

१९३ शक्ति सहो तो दुहिता पावो = अखाड़ा में अभी भी एक शक्ति का हथियार कहाता है। जोकि दृश्यमान चलाया जाकर आङ्ग उपाङ्ग घायल होने से बचाये जाते हैं अतः नृप द्वारा कोई शक्ति नामक शस्त्र चलाया गया जोकि अखण्ड बली लक्ष्मण को चोट न पहुचा सका, तिस-

धत पर गर्ज के नृपति ने कहा था कि हमारी शक्ति नामक शस्त्र का वार झेलो तो पुत्री का सम्बन्ध कर सकते हो।

,, संकेतो=इशारो कियो।

,, कटाक्ष=तिरछी आंख से निरखना।

,, सचलाये=उथल,पुथल हुआ,

१९४ मनहु गरुण, अहि दाव= मानो गरुण पक्षी ने सर्प को दाव लिया,ऐसा मालुम पड़े।

,, तिम चतु कांखहिं खाय= तीसरी और चौथी शक्ति कांखों में झेल लीं।

१९५ गजमद टारन शक्ति यह= वड़े २ मदोन्मत्त हाथियों के मद को उतार देवे ऐसी शक्ति।

१९६ मंगल सूचक=आनंद की सूचना करने वाला।

,, मँजुल=मिष्ट।

१९७ अर्धनिश=आधीरात।

,, अग्र=आगे।

,, जिव्हारथ=परस्पर में वचनालाप करते।

१९८ पुष्प आभरण=फूलों के गहने।

,, अलिगन=भोरों के समूह।

,, वपु=शरीर।

१९९ कर्ण वधिर हो=क़ान वहिरे हो जाते हैं।

,, वीड़ा=ठान लिया।

,, निशि भीजें त्यों २ वधै= ज्यों २ रात्रि होवै त्यों २ वढ़े,

,, विपति विसाहन = जबरन मोल लेने के लिये।

२०० हुये छिन्नपग दोय=दोनों पैर चुटीले हो गये।

,, करगह=हाथ पकड़के।

,, भुज प्रलंब=हाथ लुंबाये हुए

२०१ वृश्चिकादि=वीछू आदिक।

,, गुणगण मुक्ता चुगहिं नित, आत्म मानसर हंस=मुनि की आत्मा मानो मानसरोवर का हंस है जो कि गुण समूह रूपी मोती को सदा चुगता है।

,, वनचर=वनवासी तिर्यंच।

,, भक्तत=भक्ति करते हुए।

२ रव घनघोरा=अत्यन्त भयंकर शब्द।

,, दूजा पाया=शुक्लध्यान का दूजा भंग एकत्ववितर्क अविचार, जिससे मोह नाश कर शेष जीवने घातिया कर्म नाश किये।

,, रहस=अन्तराय कर्म।

,, रज=ज्ञानावर्ण और दर्शनावर्ण कर्म।

३ मित्र फँसा=मित्र मोहित हुवा।

४ आचार्य=दीक्षा देने वाले, मुनि संघ की रक्षा करने में सदा सावधान, छत्तीस गुण के धारक, परम तेजस्वी साधु

,, आर्यिका = महिलाओं में सर्वोत्कृष्ट व्रत धारण करने वाली, मुनी समान, एक श्वेत साड़ी मात्र परिग्रह रक्खें।

८ दीप्ति=तेज चमक।

,, सुरधनु=इन्द्र धनुष।

,, हस्ति कर्ण सम = हाथी के कान समान।

,, मन मतंग=मनरूपी हाथी।

२०६ कंथ=स्वामी।

२०८ कुयोनन = खोटी दुख देने वाली ऐसी नरक और तिर्यंच गति जिसमें दुख ही दुख, जीव निरन्तर आयु पर्यन्त भोगै है।

,, वीतै=व्यतीत होवै।

,, विरकत=चित से, परपदार्थों में उदासीनता हो जाना।

२०९ क्रपैकाय =शरीर को सुखावै

,, भ्रत्य=सेवक।

,, सगाई=व्याह सम्बन्ध।

२१० नभचारिणि=आकाशगामिनी

,, किय विहार तीर्थादि मँह, वंदे जिन आगार=तीर्थादिकों के विषे जा करके जिन मन्दिर सम्बन्धी जिन प्रतिमाओं के दर्शन किये।

२११ कामुक तपी=काम वेदना से विकल हो तपसी।

,, एकाकिनी=अकेली।

,, आघात=मरण।

,, विघात=मरण।

२१२ दाह=वेदना।

२१३ अमुल्य=जिसका मूल्य नहीं

,, धर्म अर्थ कामहु सधै=ये तीन पुरुषार्थ अर्थात् धर्म= जिससे मोक्ष प्राप्ति का साधन हो। अर्थ = लोक व्यवहार सम्बन्धी द्रव्यादि प्रयोजन सधै, या अन्तरङ्ग हित प्रयोजन सधै। काम= लोक व्यवहार साधने के लिये पुत्रादिकों की उत्पत्ति का साधन। या अन्तरंग हित सम्बन्धी कार्य में उत्साह।

,, अतुल्य = जिसकी तुलना नहीं।

,, अपवर्ग = मोक्ष।

,, चाव = लालसा।

२१४ दुखदा = दुख के देनेवाले।

,, घोर उपसर्ग=महान उपद्रव

२१५ हर, बलभद्र लख = नारायण बलभद्र पदवी धारी पुरुष जानके।

२१६ दिग दिगन्त=सर्व दिशाओं में।

,, गुन्जें = गुन्जार करें।

,, कुन्जें = पक्षी शब्द उच्चारण करें।

,, प्रकृति = स्वाभाविक परिणति।

२१७ पंकति = श्रेणीबद्ध।

२१८ नदहिं वेग = नदी के जल समान तेजी से वहै।

,, वर्ज = रोक।

,, अहनिशि नूतन = दिनरात नये नये।

,, योगरु तथा विछोह = मिलें और तैसे ही विछुड़ें।

२१९ नवीनें = नये।

,, रुचिर = सुन्दर।

२२० द्वारापेक्षण = नवधा भक्ति पूर्वक मुनि को पड़गाहने के लिये द्वार पर खड़े होना।

॥ श्री जिनाय नमः ॥

सरल जैन रामायण

(द्वितीयकाण्ड)

(अध्यात्मरत्न, व्याख्यानभूषण, ब्रह्मचारी कस्तूरचंद नायक रचित)

मंगलाचरण:—

दोहा—देव शास्त्र गुरु धर्म नमि, चौबीसों जिनराय।
सरलजैनरामायणहिं, रचत द्वितिय अध्याय॥
निज स्वरूपमँह रमत नित, धर विशुद्ध परिणाम।
"नायक" रत्नत्रय रुची, दायक मुक्ति ललाम॥

वीरछन्द:—

प्रथमकांड में रावण वैभव, तसु विस्तृत वर्णन बतलाय।
द्वितियकांडमँह राघव लक्ष्मण, भरत शत्रुहन का सुखदाय॥
पितु का "वचन" निवाहन कारण, राघव लक्ष्मण बनें उदार।
राजभरतदै विदेश गवने, गवनी सियहू पियके लार॥

दोहा—भरतैरावत क्षेत्रमँह, फिरत काल छह जाँय।
प्रथम द्वितीय तृतीयमँह, भोगभूमिया होंय॥
आय चतुर्थम काल जब, कर्मभूमि अवतार।
चौदह कुलकर होंय तब, ज्ञानवंत सुखकार॥

अन्तिम नाभिराय कहलाये, तिनने, ऋषभकुँवर सुत जाये।
इक्षुवंशकुल ऋषभकुमारा, कर्मभूमि मारग विस्तारा॥
जिय बाधायें सर्व मिटाईं, षट् कर्मन की विधि दर्शाईं।
सर्व सुखी ह्वै, यातें प्रानी, चंद्रकला सम ह्वै सुखदानी॥

दोहा—कल्पवृक्ष निष्फल भये, महदुख जनता पाय।
सुखकर मार्ग बतायतिहिं, सबदुख दीन्ह मिटाय॥
असि मसि कृषि वाणिज्य अरु, सेवा शिल्प उचार।
जनता ने ब्रह्मा कहा, लखा महत उपकार॥

रक्षी जनता, विष्णु कहाये, हरे दुःख शंकर पद पाये।
याविध ब्रह्मा विष्णु महेशा, कहाए आदिनाथ परमेशा॥
यों दत्तात्रय नाम लहाया, सबकों सुखद मार्ग बतलाया।
याविध कर्मभूमि विस्तारे, बाधा मिटीं, सर्व सुख धारे॥

दोहा—लाख तिरासी पूव तक, कीन्ह राज्य सुख लीन्ह।
कारण पाय विराग लह, नाश कर्म चव कीन्ह॥
केवलज्ञान विभूतिलह, मोक्षमार्ग दर्शाय।
जिय संबोधे, तिन गहा, मोक्षमार्ग सुखदाय॥

सप्ततत्त्व पट द्रव्य लखाई, भेदाभेद विधीं सब पाई।
सत सामान्य अभेद कहाये, भेद विशेष अपेक्षा पाये।
जिय, जड़, धर्म, अधर्म पिछानें, काल अकाश मिलें पट् जानें॥
चार द्रव्य धर्मादि स्वभावी, पुद्गल जीव स्वभाव विभावी॥

दोहा–पुद्गल जीव विभावयुत, बँधे जगत के मांहि।
स्वभाव मांही परिणवें, बँधें कबहुँ दोइ नांहि॥
वर्ण गंध रस फरस जड़, रूपी पुद्गल जान।
ज्ञाता दृष्टा चेतना, जीव अरूपी मान॥

प्रभु वानी लख, स्वयं विचारे, आप स्वरूप सदा चित धारे।
श्रद्धा ज्ञान आचरण लीन्हें, तबहिं विभाव नष्ट कर दीन्हें॥
आतम केवलज्ञान उपावें, नशें अघाती शिवपद पावें।
पूर्ण स्वतंत्र स्वराज्यहिं पाये, जग का आवागमन मिटाये॥

दोहा–ऋषभ जिनेश्वर केवली, यों संबोधे जीव।
आप तरे, पर तारके, सुखिया कीन्ह सदीव॥
लीन्हीं स्वयं स्वतंत्रिता, विधि परतंत्री नाश।
जोभी शिक्षा लहें ते, स्वतंत्रिता परकाश॥

इक्ष्वाकुवंशमँह अनेक राया, परम्परावत्त वंश चलाया।
स्वर्ग नर्क शिवधाम सिधाये, अपनी करनी का फल पाये॥
समयपाय रघु हुये प्रतापी, यानृप कीर्ति दशोंदिश व्यापी।
परिजन पुरजन, अतिसुख पाये, दुखी दीन ना, कोय दिखाये॥

दोहा-पितु समान पालै प्रजा, न्यायवंत नरपाल।
प्रजा, धर्म, शुभ कर्मरत, रहै सदा खुशहाल॥
जिमि राजा, तैसो प्रजा, नृपति अंश कहलाय।
धरणी हू तैसी फलै, नीर बीज जिमि पाय॥

ह्वै सुत अरण्य, रघु गृह मांही, घर घर आनँद, बजीं बधांई।
परिजन पुरजन, अति सुख लीन्हें, वांछित दान यांचकन दीन्हें॥
बाढ़े शिशु जिमि दुतिया चंदा, यौवनवंत हुआ रघुनंदा।
होवै परिणय आनँदकारी, सबही सुखी हुये नर नारी॥

दोहा-समयपाय रघु चित्तमँह, उपजा दृढ़ वैराग।
लख भुजंगसम भोगनहिं, आत्मरूपमँह जाग॥
दीन्हा राज अरण्य को, आप गुरू ढिग जाय।
मुनिपद दीक्षा आदरी, शिव की आस लगाय॥

ह्वै अरण्य, सबकों सुखकारी, फैली कीर्ति दशों दिशि भारी।
क्रमशः नृपने द्वयसुत जाये, अनन्तरथ, दशरथ कहलाये॥
शील गुणनयुत आज्ञाकारी, शस्त्र शास्त्र विद्या भन्डारी।
सुत यौवनपण, तात लखाया, शुभ कन्यन संग ब्याह रचाया॥

दोहा-माहिष्मति नगरी नृपति, सहसरश्मि सहजोर।
तासे नृपति अरण्य ने, घनी मित्रता जोर॥
दोउ परस्पर किय "वचन", संगै धरें विराग।
धरै प्रथम, देवै खबर, "वचन" निवाहन काज॥

"वचन" दुहुन मित्रन नें कीन्हा, सांचा मित्रपणा गह लीन्हा ।
कीन्हा कथन विराम यहां का, कहँ संबंधित कथन वहां का ॥
हरि पै, रावण कीन्ह चढ़ाई, जब पुरि माहिष्मति ढिग आई ।
पड़ाव रेवा तट पै डाला, पुन तँह, पूजन रची विशाला ॥

दोहा–रावण पूजनमँह मगन, विघ्न हुआ ता मांहि ।
आइ ठेलि जल की घनी, रोकी, रुकती नांहि ॥
लखा विघ्न पूजन विषें, कहि रावण तत्काल ।
कौन कीन्ह उत्पात यह, वेग लखो तसु हाल ॥

प्रभु आज्ञा सुन, बहु नृप चाले, ठेलि ओर कों चले उताले ।
सहसरश्मि माहिष्मति राया, जल क्रीड़नहित, नीर बँधाया ॥
कीन्हीं केलि तियन बुलवाके, क्रीड़त सुध बुध, रही न याके ।
धृम कीन्ह, जल बंधन टूटा, नीर प्रवाह तबहिं द्रुत छूटा ॥

दोहा–जलप्रवाह अतिही लखा, रावण हिय रिपधार ।
द्रुत उठाइ प्रतिमा तबहिं, धारी शीस मँझार ॥
लखा विघ्न पूजन विषें, यातें अतिरिप लीन्ह ।
नयन अरुण, भृकुटी चढ़ी, तत्त्वण आज्ञा दीन्ह ॥

सहसरश्मि ने, अरिदल देखा, आय घटागम ढिगही लेखा ।
निकस नीर तें, सन्मुख आके, अपनी सेना शीघ्र सजाके ॥
अरि पै शस्त्र विकट बरसाये, इक योजन तक सैन्य हटाये ।
टिकै न कोऊ, सन्मुख आके, कोय कहा रावण पै जाके ॥

दोहा—लखो महीपति आपकी, सैन्य हटत ही जाय।
वा योद्धा के सनमुखें, कोय टिकन न पाय॥
मारामार मँचावता, क्षणमँह लेता प्रान।
यातें सेना हट गई, इक योजन परिमान॥

यों सुन, रावण अति रिसयाके, द्रुत चढ़ गज पै, रणमँह आके।
सहसरश्मि का सन्मुख कीना, मार मँचाई, देर लगी ना॥
सेल, खडग, मुगदर, शर घाले, वरछी गदा, चलाये भाले।
मँचा युद्ध अति ही धनघोरा, प्रहार करते दोउन ओरा॥

दोहा—जिमि रावण बलवन्त तिमि, सहसरश्मि सहजोर।
मानो केहरि ही लड़ें, गर्जें तँह घनघोर॥
शस्त्र विफल दोनों करें, निज निज अंग बचाँय।
बहुत समय बीता जबै, सहसरश्मि रिसयाँय॥

मारा बाण, देर की नांही, बखतर भेद चुभा तन मांही।
बाण निकास गिनी ना पीरा, ऐसा रावण, था वर वीरा॥
योंलख सहसरश्मि विहँसाके, बोला वचन कटुक अति तासे।
अहो दशानन, सीख अभी तो, पुन रण कीजो, गुरू कही तो॥

दोहा—सुनत कुवच भिद तीर सम, अति पीड़ा उपजाय।
रावण अति रिसयायकें, दीन्हीं सेल चलाय॥
सेल लगत, मूर्छित हुवा, रथ मांही गिर जाय।
ह्वै सचेत, अरि मारनें, वाही सेल उठाय॥

रावण हुमक ढिगै द्रुत आया, बांधा याको ढील न लाया।
लहे दशानन शक्ति अपारी, टिकन न समरथ अरिने धारी ॥
जगमँह इकसे इक बलवन्ता, नृपति दिपैं जिमि सूर्य महन्ता।
सहसरश्मि इत, बहुनृप स्वामी, उतै दशानन, खगपति नामी ॥

दोहा-तउ रावण के सन्मुखे, मदयुत अतिरण कीन्ह।
टिकन न समरथ पुनरुपित, उत्तर कटुक वच दीन्ह ॥
श्रवणत लागे बाणसम, चुभे हिये के मांहि।
बलयुत बांधा द्रुत अरिहिं, देर लगी पुन नांहि ॥

प्रथमकांडमँह कथन बताया, लह प्रसंग संक्षेप दिखाया।
विस्तृत कथन तहां पै देखो, यहां प्रयोजनभृत सु लेखो ॥
सहसरश्मि ने बंधन लीन्हा, परिजन पुरजन अति दुख कीन्हा।
आय ढिगै शतबाहु ऋषी के, जंघाचारण स्वामि ऋषी के ॥

दोहा सहसरश्मि के तात, इन, तजा जगत जंजाल।
चिनवत, सबमिलकर कहा, प्रभु बंधन का हाल ॥
दुखित होय पुन विनय किय, रावण के ढिग जाव।
हमसबका दुख मेंटनें, पुत्र छुड़ाकें लाव ॥

बंध मोचनें आग्रह कीनें, सुन याविध शतबाहु ऋषीनें।
क्या भविष्य सुत? ताहि विचारा, हो मुनि, पुन सँग करे विहारा ॥
सुखी करों ये जनता सारी, याविध हियमँह करुणा धारी।
सर्व जनन हित, ऋषिवर चाले, रावण के ढिग आए उताले ॥

दोहा-निज ढिग आवत लखऋषिहिं, रावण शीस नमाय।
मुदित होय अति विनय युत, काष्ठासन बैठाय ॥
आप भूमिमँह तिष्ठ पुन, अति थुति, वंदन कीन्ह।
अहो, वीतरागी ऋषी, दर्शन मोकों दीन्ह ॥

आप जगत के, परम हितू हो, दुःख निवारक, परम पितू हो।
शान्ति सुखद हो करुणासागर, समताधारी हो जग जाहर ॥
धन्य भाग्य, मम धाम पधारे, मेरा अशुभ नशावनहारे।
उचरी थुति, हियमँह हरपाये, मनुनिधिअनुपम, रावण पाये।

दोहा-यों रावणकी विनय लख, बोले श्री ऋषिराज।
वानि सुधा सम नीसरी, सुन रावण खगराज ॥
मात तात तुअ धन्य, जिन, जाये, तोसम बाल।
वीर, प्रतापी, वचननिधि, न्यायवन्त भूपाल ॥

हो जगविजयी, वीर अपारा, जीत लीन्ह भूमंडल सारा।
सहसरश्मि को बन्धन कीन्हा, यामें अचरज कोनें लीन्हा ॥
न्याय मार्ग अब हिये विचारो, कीन्ह पराभव, पुन अरि छांरो।
यों ऋषिवर, दशमुखहिं उचारा, मनहु अमिय की बरसी धारा।

दोहा-सुन रावण, यों ऋषिवयन, शीस नाय, दिय धोक।
कहि, आज्ञा हुइ आपकी, कौन शक्ति ? दे रोक ॥
आज्ञा दीन्ही सेवकन, सहसरश्मि को लाव।
यों सुन बहुभट जाय द्रुत, लावन कीन्ह उपाव ॥

बहुत चौकसी करके लाये, सावधान व्है, अति भय खाये।
यदी कदाचित, ये रिप धारें, बिना शस्त्र ही, सबहिं पछारें॥
है बल ऐता, या तन माहीं, कोउ शूर टिक सकता नाहीं।
पै वह, ईर्यापथ से आया, रंच न कोप हिये मँह लाया॥

दोहा–सहसरश्मि इत आयकें, निज पितु को शिर नाय।
ऋषिहिं ढिगै ही बैठ पुन, महि पै दृष्टि गड़ाय॥
सौम्यमूर्ति जिमिचन्द्रसम, कला छिटकि चहुँओर।
शान्ति हुआ वातावरण, रंच न होवै शोर॥

यों लख रावण, ताहि उचारा, है तूं चौथा भ्रात हमारा।
हरिको जीतों, तो सँग जाके, गर्व मिटाहों, सब विध वाके॥
मनुज होय, हरिनाम धराया, श्याल होयकें, सिंह कहाया।
निज साली, अब तोकों व्याहों, भ्राता समही, हियमँह चाहों॥

दोहा–यों सुन, रावण के वयन, सहसरश्मि उच्चार।
सुनहु दशानन, मम हृदय, जग को लखा असार॥
जगरमणी से ना रमूं, शिवरमणी की चाह।
यातें मुनिपद धारहों, अन्य न हियमँह लाह।

रावण विविध भांति समझाया, पै याके चित, एक न भाया।
बुलाय सुतको, वैभव दीन्हा, आप तात ढिग, मुनि पद लीन्हा।
नृपअरण्यढिग, खबर पठाई, "वचन बद्ध" की हुती मिताई।
मैं उदास व्है, मुनि पद धारा, दीन्ह खबर कर्त्तव्य हमारा॥

दोहा–सुनतइ खबर अरण्य नृप, शोकातुर हो जाय ।
बिना मित्र, जीवन वृथा, योंकह अश्रु बहाय ॥
पुन कछु समता धार हिय, याविध कीन्ह विचार ।
"वचनबद्ध" दोउ मित्र हैं, संगै लें व्रत धार ॥

परिजन पुरजन सबहिं बुलाये, "वचनबद्ध" वृत्तांत सुनाये ।
हुता मित्र से "वचन" हमारा, हों दीक्षामँह संग तिहारा ॥
यातें "वचन" अवश्य निभावें, मुनिपद धारन, वनमँह जावें ।
योंकह युगल सुतहिं बुलवाये, उनको हू वृत्तान्त सुनाये ॥

दोहा–कहा, सम्हारो नृपति पद, अब हम मुनि पद लेंय ।
धर्म कर्म रक्षा करन, राजपाट सब देंय ॥
कोय न स्वामी काहु का, ना कोई है दास ।
झूंठा नाता जगतमँह, झूंठी जग की आस ॥

सुन अनन्तरथ, विहँस उचारा, माना हम उपदेश तिहारा ।
कोय काहु का, है जब नाहीं, हमें फँसावत क्यों जग माहीं ॥
झूंठी जग की आस बताई, मेरे हिय भी, यही समाई ।
संग तिहारे मुनिपद धारों, संगै कर्म अरी को मारों ॥

दोहा–सुनत ज्येष्ठ सुत का वयन, विहँस कहा नरराय ।
धन्य सुकृत का पुञ्ज सुत, स्वकुल रीति अपनाय ॥
धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभ कर जान ।
है दुर्लभ सन्सारमँह, एक यथारथ ज्ञान ॥

यों कह स्वपद दशरथहिं दीन्हा, आप जाय, सुतयुत व्रत लीन्हा।
सर्व परिग्गृह पोट उतारी, आत्मरमणता श्रेष्ठ विचारी ॥
उग्र उग्र तप धारन कीन्हें, जीत परीषह, बाइस लीन्हें ।
धन्य धन्य, ये जीव कहाये, तज जगसुख, शिव सुःख लहाये ॥

दोहा—निज स्वभाव मँह मग्न जिय, ध्यावें आतम स्वरूप ।
चक्रवर्ति तीर्थेश पद, पाय, होय शिव भूप ॥
यातें महिमा धर्म की, कह न सके गणराज ।
निधिरत्नत्रय मिलत है, और मोक्ष साम्राज ॥

दशरथ, परजा सुतसम पालै, न्याय नीति युत, नितही चालै ।
हुतीं तीन दशरथ की रानी, प्रथम कौशिला, रती समानी ॥
द्वितिय सुमित्रा, नृपहिं सुहाई, तृतिय सुप्रभा पिय सुखदाई ।
आपस मांहि प्रेम दर्शाईं, श्री ही लक्ष्मी सदृश कहाईं ॥

दोहा—पुण्योदय से सुख विभव, ढिगै स्वयम ही आय ।
पापोदय से क्षणक मँह, चपला सदृश नशाय ॥
"नायक" रमत स्वरूप नित, प्रगटें स्वगुण अनन्त ।
निधिरत्नत्रयमँह रमत, यही मोक्ष का पन्थ ॥

इति रघुवंशोत्पत्ति वर्णन नामकः प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः ।

अथ नारद जी का, राजा दशरथ और जनक के पास आकर, लंका का षडयंत्र वर्णन

—वीरछन्द—

एक समय, निज आसन दशरथ, बैठे राजसभा के मांहि।
तिहिं अवसर पर नारद आये, रविसम तेज, छिपै जिन नांहि ॥
लख दशरथ, विनवत शिर नाया, सिंहासन पै लिया बिठाय।
विहँस नृपति बोले मृदुवानी, कहँतें आगम ह्वै ऋषिराय ॥
दोहा–दशरथ के यों सरस वच, मनु कोकिल के वैन।
श्रवत सुखद सबमन हरत, देंय सुधा सम चैन ॥
सत्पुरुषन की संगती, महत पुण्यतें पाय।
भवतारण को तरणि सम, दे शिवपुर पहुँचाय ॥

पुन दशरथने थुती उचारी, सुन नारद, हिय हरषे भारी।
प्रभुका वंदन प्रथमहिं कीन्हा, पुन यों आगम बताय दीन्हा ॥
क्षेत्रविदेह रम्यता धारी, रचना रुचिर महा सुखकारी।
सदा चतुर्थकाल ही पाये, पुरुषशलाका नित उपजाये ॥

दोहा–तीर्थंकर चक्रेश हर, हलधरादि तिहिं थान।
उपजें नित पदवी पुरुष, करें कर्म की हान ॥
याविध नितही धर्म की, फहरै ध्वजा विशाल।
तपकल्याणक लख अबै, ताका वरणों हाल ॥

पुण्डरीकपुर मांही आया, तपकल्याणक साज लखाया।
भोग अरुचि सीमंधर धारी, कल्याणकहित, इन्द्र विचारी ॥
सुर लौकान्तिक, प्रभुढिग आके, द्वादशभावन थुती सुनाके।
कहें, प्रभो तुम भली विचारी, सांचे बनें स्वपर उपकारी ॥

दोहा—यों नियोग पूरण करन, सुर लौकान्तिक आंय।
स्वयंबुद्ध भगवान को, उपदेशें, सुख पांय ॥
लौट गये निजथान को, हरि कल्याणक ठान।
रची रुचिर शिविका तुरत, पधरावन भगवान ॥

वस्त्राभरण सुभग पहराकें, प्रभुको शिविका मांहि बिठाकें।
निरखे, शिवरमणीवर जानें, अतिही थुति जिनवरकी ठानें ॥
अनुपम भक्ति, इंद्र दर्शाई, गुणकी महिमा प्रमुदत गाई।
विपुल राग प्रभु से दर्शाये, ताण्डव नृत्य अनूप रचाये ॥

दोहा—ज्ञान चेतना जन्मतहिं, तीर्थंकर के होय।
तोभी फँसै सराग मन, काललब्धि ना जोय ॥
काललब्धि आवै जबै, द्रुत विरागता छाय।
करें मोक्ष पुरुषार्थ को, तपहित वनमँह जाय ॥

यदपि इन्द्र हू इक भव धारें, अपनी नैया पार उतारें।
राग भाव को हेय पिछानें, तउ सरागता प्रभु प्रति ठानें ॥
प्रभु को लख रत्नत्रयधारी, हैं ये यातें शिव अधिकारी।
मैंभी निधिरत्नत्रय पावों, यही चहों कब शिवपुर जावों ॥

दोहा–शिविकामँह पधराय प्रभु, हरि ने चहा उठांय।
तभी बढ़े, नर खगपती, हरि को रोक लगांय॥
अनधिकार क्यों करत हो, हिय विवेक नहिं कीन।
भूमि, नीर लह, बीज बिन, फल से रहित विहीन॥

प्रभुहिं संग, जग व्याधि हटावें, वेही शिविका प्रथम उठावें।
सुनतइ हरि, पांछे हट जावे, अपने मनमँह अति पछतावे॥
तपधारन ममशक्ती नांही, है ये शक्ति मनुज के मांही।
जन्में प्रभु, मैं सेवा कीन्ही, दीक्षा समय विफलता लीन्ही॥

दोहा–खगपति उमगे द्रुत तबहिं, शिविका प्रथम उठांय।
आस प्रभू सँग लगन की, वेही आगे आंय॥
यों लख, नरपति डांटकें, तिनकों रोक लगांय।
कुल, प्रभु का सोचा नहीं, चाले, प्रथम उठांय॥

तुम्र कुलमँह, प्रभु उपजे नांही, उपजे हैं प्रभु, हमकुल मांही।
हुवा प्रथम अधिकार हमारा, पांछे हो, अधिकार तिहारा॥
सुनखग विलखत, पांछे जावें, उमग नृपति द्रुत, आगे आवें।
प्रभुकुल का माहात्म्य विचारा, हुवा जन्म, धन भाग्य हमारा॥

दोहा–सप्त पैड़ चल नरपती, खगकों शिविका दीन्ह।
पुन हरि शिविका लेयकें, जन्म सफल निज कीन्ह॥
केवल यहां नियोग का, रच दीन्हा विस्तार।
तप अतिशय वर्णन किया, नर, खग, देव मँझार॥

तपका यों माहात्म्य उचारा, तपधारनमँह सुरपति हारा।
कुल मांही, खगपतिहू हारे, यों प्रभुकुल माहात्म्य उचारे॥
तीर्थंकर, चक्री, हर, हलधर, उपजें भूमिज, ये पदवीधर।
याविध अतिशय नियमित धारे, कर्मभूमिमँह उपजें सारे॥

दोहा—वनमँह शिविका लाय धरि, प्रभु उतरे, सब छांर।
केश लोंच किय, हरि उन्हें, क्षीरोदधिमँह डार॥
मौन गहा प्रभुने तबहिं, नाश घातियन कीन्ह।
केवलज्ञान विभूति लह, पुन शिवपद गह लीन्ह॥

योंतप अतिशय, नृपहिं बताये, क्षेत्र विदेह मांहि लख आये।
गर्भ, जन्म, केवल कल्याणक, देखे मैंने सबताथानक॥
निर्वाणोत्सव, मैंने देखा, वंदी भस्म हिये सुख लेखा।
वंदे चैत्यहु द्वीप अढ़ाई, भरतक्षेत्र, अब आया राई।

दोहा—शान्तिनाथ के दर्शनन, पहुँचा लंका थान।
प्रभुकी छविलख, सुख लहा, मनु किय अमृतपान॥
थुति उचरी, हिय मग्न ह्वै, निकसन मन ना होय।
आगे हाल बतांव जब, होय न तीजा कोय॥

सुन नृप, सबकों कीन्ह इशारा, रहा न कोई सभा मँझारा।
तबही नारद गिरा उचारी, सुननृप चितसे बात हमारी॥
तुअहित दर्शावन चित चाया, ज्योंही मन्दिर बाहर आया।
त्योंहि विभीषण मोढ़िग आके, याविध बोला शीस नमाके॥

दोहा–सुनहु ऋषी मम वीन्ती, रावण दुःख लहाय।
रहै विकल निशिदिन जिमहिं, मीन नीर ना पाय॥
कारण निमिती से कहा, काविध मृत हम लेय।
निमिती निमित विचारकें, मृतफल यों कह देय॥

रामपुत्र, नृपदशरथ जाये, जनकसुतासें व्याह रचाये।
तिन निमित्त से मृत्यु तिहारी, यों निमिती ने भ्रात उचारी॥
सुनत भ्रात अति ही अकुलाके, मोकां तुरत ढिगै बुलवाके।
निमिती की मृत बात उचारी, याविध होगी मृत्यु हमारी॥

दोहा–सुनत विभीषण विहँसकें, कहा सुनहु हे भ्रात।
कहँ दशरथ कहँ जनक नृप, कहां मृत्यु की बात॥
वे भूमिज हम खगपती, सिन्धु मध्य हम वास।
कैसे सिन्धु उलंघ वे, आंय तिहारे पास॥

यदी हिया पुन शंकै याको, मूलोच्छेद करो मैं ताको।
दोउ नृपन के शीस लुनावें, सिन्धु मांहि वे दुहू फिकावें॥
बांस न बांसुरि, कौन बजावै, पितु न, सुतासुत को उपजावै।
योंसुन रावण अतिसुख पाया, मनहु कर्म की रेख मिटाया।

दोहा–होनहार अब नष्ट हो, सोचा भ्रात उपाय।
हनें जांय दुहु नृपति तो, अरि उतपति मिट जाय॥
यों चिन्त्यत, ह्वै अति सुखी, दीन्ह अपरिमित दान।
मनहु मृत्यु अजहू नशी, मिला अमर वरदान॥

दूतही भेजे इत हलकारे, देख गये वे थान तिहारे।
उनने जाके वृत्त उचारा, याविध से है थान तिहारा॥
पै सूरत का निश्चय नांही, वे हैं या अन भूमिज मांही।
या निश्चय को मोढ़िग आके, पूंछे चितमाँह अति अकुलाके॥

दोहा—दशरथ से याविध कहा, नारद ने समझाय।
कहा सुनहु पुन ध्यान से, मारेंगे इत आय॥
केवल निर्णय करनहित, कहा विभीषण सोय।
कहो प्रभो दुहु नृपन की, जैसी सूरत होय॥

वाकी सुन मन मांहि विचारा, ये मानेगा वचन हमारा।
येनृप मम साधर्मी भाई, उनको हनने घात लगाई॥
है दोनों से प्रेम हमारा, यों चिन्तो, पुन ताहि उचारा।
बीतो समय याद ना आवै, बिन निश्चय कस तुम्हें बतावै॥

दोहा—करके निश्चय वेग से, आंवे तिहारे पास।
योंकह, वासे हो जुदा, आय तिहारे पास॥
अब जानो, जैसा करो, इन्हें विभीषण तोय।
भ्रात प्रेम वाके अधिक, ऐसो निश्चय सोय॥

जाय जनक से वृत्त उचारों, कहकर अपना भार उतारों।
योंकह, गवने नारद जाके, कहा जनक से, सब दर्शाके॥
होवे रक्षा जैसा कीजे, निज प्रानन को बचाय लीजे।
गवने नारद वेग यहांसे, लखन न पावै, आए कहां से॥

दोहा–है सचिन्त, दोनों नृपति, बचांय कैसे प्रान।
को जानें, कब, कौन विध, देय कर्म रस आन॥
कर्मसबलता जगतमँह, छणमँह, सुख, दुख देय।
"नायक" रमत स्वरूपमँह, अविनश्वर सुख लेय॥

* इति द्वितीयः परिच्छेदः समाप्तः *

अथ दोनों नृपन का विदेश गमन, विभीषण द्वारा दोनों मूर्तियों का शिरोच्छेदन वर्णन

—वीरछंद—

भययुत दशरथ सचिव बुलाके, नारद कथित वृत्त समझाय।
आय विभीषण निश्चय सेती, हम दोउन के शीस लुनाय॥
संकट मोचन, उपाय सोचो, याहि समय पै, जो बन जाय।
यदी उपाय, कछू ना भासै, करहैं मरण समाधि लगाय॥

दोहा–समय नृपति वच सुन सचिव, कीन्हा गहन विचार।
गई सूझ इक युक्ति तिहिं, प्रान बचावनहार॥
कहि, नृप वाहन सचिव ह्वै, विपति मुक्त कर देय।
निजकाप्रान गमायकें, बचा नृपतिका लेय॥

सांचा सुहृद वही कहलावै, विपति पड़े पै प्रान बचावै।
यातें हे प्रभु, चिन्ता छांरो, देशान्तरमँह जाय पधारो॥
रूप गोपकें, काल वितावहु, जोलग संकट, ना टल जावहु।
यों कह, सचिव धैर्य दिय, राया, जनकहु प्रति संदेश पठाया॥

दोहा–रूप गोपकें दुहु नृपति, देशान्तरहिं सिधाय।
देश विदेशन मँह भ्रमत, भेद न कोई पाय॥
है सब कर्म विडंबना, पैदल भ्रमत नरेश।
एक ठौर तिष्ठें नहीं, गवनत सहत कलेश॥

सचिव, शीघ्र शिल्पिहिं बुलवाके, समझाया निज युक्ति बताके।
दोउ नृपन की मूर्ति बनाओ, नृपसम होवें भेद न लाओ ॥
कोउ न समझै, ये नृप नांही, होय न संशय, मूरत मांही।
भेद न या, कोउ जाननपावै, वेग लाइयो ढील न आवै ॥

दोहा-शिल्पी ने चतुराइ से, नृपसम मूर्ति बनाय।
ते पधराई सचिव ने, सप्तखन्ड पै जाय ॥
याविधकर हर्षित हुआ, भेद न जानें कोय।
उत्सव, नृत्य सुहावनें, पूरववत सब होय ॥

सचिव सबहिन को हुकम लगाये, कोउ न नृपके ढिगमँह, जाये।
उनके तनमँह पीरा भारी, याविध रुरुज अवस्था धारी ॥
शयन करत हैं, बोलें नांही, फैली खबर नगर के मांही।
यातें नृपढिग, कोउ न आवै, ना चितमँह कोउ संशय खावै ॥

दोहा-रुपित विभीषण ने तबहि, भेजे, यँह पै शूर।
लुनों नृपन के शीस को, दी आज्ञा है क्रूर ॥
प्रथम लुनो अवधेश का, पुन जनकहु का लाव।
राजाज्ञा से भट तुरत, आये, सोचैं दाव ॥

रूप छिपाय बहुत भट आये, पै उन दांव लगन ना पायें।
शस्त्र सजे भट पहरा मांही, नृपढिग प्रविशन संधी नांही ॥
बाट विभीषण, उत नित जोवै, बहुड़ न आय, ढील बहु होवै।
कार्य करन की चिन्ता भारी, स्वयं चलन की करी तयारी ॥

दोहा–आए विभीषण कुपित ह्वै, लखा निराला ढंग।
सतखन पै दशरथ पड़े, ढका तास का अंग॥
निज भट को आज्ञा दई, नृपशिर लुनके लाव।
आप स्वतः सन्मुख खड़ा, हन्या नृपहिं लखाव॥

हना गया नृप, लख दरवारी, रोय उठे, ध्वनि छाई भारी।
चला विभीषण शिरको लैके, उत लुनवाया आज्ञा दैके॥
सिन्धु मांहि शिर दोऊ डारे, अपने चित का भार उतारे।
कार्य सिद्ध कर हियहरपाया, मनहु भ्रात का अशुभ नशाया॥

दोहा–पुन विवेक उठ हृदय मँह, क्यों किय ? महा अनर्थ।
कँह भूमिज, कँह खगपती, हत्या कीन्ही व्यर्थ॥
वृथा मोह वश भ्रात के, विज्ञ होय वध कीन्ह।
व्है अज्ञानी, मह विपुल, पाप बंध कर लीन्ह॥

यों संताप हिये मँह छाया, पुन चिन्तै पुन कम्पै काया।
हैं मृगेन्द्रसम खगपति सारे, नरपतिमृगसम पौरुप धारे॥
रवि सन्मुख, ना दीपै तारा, याविध मैंने नांहि विचारा।
वृथा भूमिजन से भय खाया, इमहिंचिन्त्य, हियमँह पछताया॥

दोहा–न्याय नीतिमँह यों कही, एते हनें न वीर।
वाल वृद्ध होवै सरुज, नांहि शस्त्र जिन तीर॥
दीन, हीन, अपराध विन, भागे, भयको खाय।
यदी हनै एतेन को, होय पाप अधिकाय॥

सरुज अवस्था दुहु नृप धारी, ऐसी मैंने नांहि विचारी ।
किन्तु दुहुन के शिर लुनवाये, सिन्धु मांहि ते दुहू फिकाये ॥
निमिती बात सत्य ही होवै, तो काहे कों वह दुख जोवै ।
निमित आपनो नाहिं विचारै, पर बतलाके भाव विगारै ॥

दोहा–हुता विभीषण समकिती, धर्मी जगत प्रसिद्ध ।
संकल्पी हिन्सा करी, जों है सदा निपिद्ध ॥
धिक जग मोह चरित्र यह, ज्ञानी हू फँस जाय ।
"नायक" रमत स्वरूप नित, पद अविनश्वर पाय ॥

इति तृतीयः परिच्छेदः समाप्तः ।

अथ केकइ का स्वयंवर, तँहपै दशरथ के गले में वरमाला गेरना

अनेक राजावों से दशरथ का युद्ध, केकइ की सहायता से युद्ध में विजय

दशरथ के द्वारा केकइ को वरदान की प्राप्ति वर्णन

—वीरछंद—

कर्म विवशता पाये नरपति, दशरथ, जनक भ्रमत अकुलाय।
कहुँ संध्या कहुँ प्रात वितावें, नांही कोई शरण सहाय॥
कह न सके इन कर्मन की गति, चौरासीमँह अति दुख देय।
पूर्व बँधे अवश फल देवें, क्षणमँह सुख लह, क्षण दुख लेय॥

दोहा—हुता नृपति इक शुभमती, तसु रानी पृथु नाम।
तास सुता केकइ हुती, रूप सुगुण की धाम॥
द्रोणमेघ इक पुत्र हू, सर्व गुणन की खान।
सबविध से भूपति सुखी, तिय, सुत, दल, धन, धान॥

यौवनवती सुता नृप देखी, परिणय करन योग्यता लखी।
सम्यकसहित वृतन दिपताई, शस्त्र, शास्त्र, रणमँह निपुणाई॥
काको सुता व्याह अब देवै, यों चिन्ता नृप हियमँह लेवै।
तबहि सचिव से नृपति उचारे, दुहिता वर, को जँचे तिहारे॥

दोहा—सुनत सचिवने विनय किय, सुनहु हमारी नाथ।
जँचत स्वयंवर विधि रुचिर, वरन, सुता के हाथ॥
सुनत नृपति हर्षित हुये, पाती दई पठाय।
सजि सजि साज समाज नृप, मंडपमँह सब आय॥

सभा मांहि सब नृपति विराजे, मध्य मांहि छवि दशरथ छाजे।
तारागणमँह, शशि जिम सोहै, तिम दशरथ की द्युति मन मोहै॥
साज समाज कछुहु ढिग नांही, केवल दीप्ति दिपै तन मांही।
विना निमंत्रित, आए तहां पे, रविसम तेज दिपाय यहां पे॥

दोहा—सभामांहि सोहें नृपति, केकइ तँहपै आय।
नृपतिन विरद बखानवे, हुती संग इक धाय॥
सबहिन विरद बखान दिय, याको रुचा न एक।
बहु सज धज बैठे सबै, देखी नृपति अनेक॥

सभा मांझ दशरथ को देखी, वरन योग्यता, यामँह लेखी।
जेमरत्न ना छिपै छिपाया, तासम येभी, महनृप आया॥
यामँह कोउ सजावट नांही, तउ रवि दीप्ति दिपै तन मांही।
यों लखि, माल गले मँह डारी, शचि सम, ढिगमँह, होगइ ठाड़ी॥

दोहा—शशि ढिग सोहै रोहिणी, या हरिढिग शचि आय।
पुलकत वदन सुमंच पर, गले माल पहिराय॥
यों उपमें हिय मुदित हो, जे नृप सुष्ठु महान।
कुपित हुये दुर्जन नृपति, युद्ध करन चित ठान॥

दशरथ सभा मांझ इमि राजै, जिमिगजगण मँह सिंह विराजै।
हुता न विकलप, या चित मांही, वरै मोयकों दूजो नांही॥
पुण्य योग ने जोड़ मिलाई, जैसा वर तिमि वधू सुहाई।
लख दशरथ अनुमान लगाया, सवसुख मिलत, पुण्यकी माया॥

दोहा–दुष्ट नृपति यों कुवच कह, कन्या नांहि विवेक।
इतनें नरपति त्यागकें, जँचा रंक यह एक॥
यातें याहि निकास पुन, परसें देवें व्याह।
जो आवे सन्मुख उसे, यमपुर देंय पठाय॥

योंकह, दुठनृप, अतिरिसयाये, रणका साज सजाकें आये।
मँच कोलाहल तँहपै भारी, लखत ससुर, दशरथहिं उचारी॥
जावो द्रुत तुम, महलन मांही, मनमँह भय तुम खावो नांही।
इन दुष्टों को, मार भगैहों, रण करने का मजा चखैहों॥

दोहा–यों सुन दशरथ ने कहा, सुनहु प्रिया के तात।
हूं हरि, अरि ममसन्मुखें, स्याल समान दिखात॥
मेरी चिन्ता मत करो, देहु युद्ध का साज।
वार करों इन अरिन प्रति, क्षणमँह जैहें भाज॥

सुनत ससुर अनुमान लगाया, यह नरपति कोउ महान आया।
एका केहरि सम वलधारी, यातें याविध मुझे उचारी॥
रण का साजसजा द्रुत दीन्हा, क्षणमँह दशरथ सजधज लीन्हा।
ज्योंही केकइ, रथहिं विठारी, त्योंही यानें रास सम्हारी॥

दोहा–कहैं, नाथ मेरी सुनहु, मो चिन्ता, तजदेव ।
सारथिपणों निवाह हों, तुम रण की सुध लेव ॥
सुन दशरथ, हर्षित हुये, है तिय चतुर सुजान ।
कुशलपणा लह युद्धमँह, तव उचरी, यों वान ॥

रथको वेग हकाला यानें, लख दशरथ कह वयन सुहानें ।
आज लखी अनुपम क्षत्राणी, भीषण रण लख, भय ना मानी ॥
वोली ये रथ कँह पहुँचाऊं, जहां आपकी आज्ञा पाऊं ।
सुन दशरथ, मृदु गिरा उचारी, जो नृप होय सवन मँह भारी ॥

दोहा–निरपराध के हननतें, कहा लाभ रणमांहि ।
मारों नृपति शिरोमणी, पुन कोउ ठहरै नांहि ॥
ज्यों वनमँह हरि एकला, गजगण देत पछार ।
अन्य पशू भागै स्वयं, कोउ न ठहरनहार ॥

हेमप्रभ सवमँह वलशाली, यों कह, ताढिग रथ ले चाली ।
ध्वजा छत्र युत, रथ अतिसोहै, दम्पति निरखि, विश्व मन मोहै ॥
दशरथ खरतर वाण चलाये, अगणित अरिगण मार गिराये ।
वहुनृप अपनें, प्रान गमावें, शिरनय वहुनृप, शरणें आवें ॥

दोहा–लखो प्रभो वह है अरी, हेमप्रभहिं वतांव ।
ताको लख, दशरथ कहा, रणका स्वाद चखांव ॥
विना प्रयोजन युद्ध किय, न्यायरु नीति उलंघ ।
गर्व मिटाऊं क्षण विषें, मेंटों, युद्ध उमंग ॥

सुन कैकइ, रथ वेग हकाली, पवन समान रथहिं ले चाली ।
क्षणमँह ताके ढिग पहुँचाया, कहै, लखहु, वह सन्मुख आया ॥
महानवैभव तास दिखावै, बलिन मांहि परचंड कहावै ।
योंसुन दशरथ अति रिसयाये, ताप्रति तीक्षण बाण चलाये ॥

दोहा—सबमिल, दशरथको हनें, ये इकला कर घात ।
जिमि गजगण को केहरी, करता बाराबाट ॥
इक दशरथ मनु बहु भयो, ऐसे बाण चलाय ।
तत्क्षण अरि, महिपै गिरें, प्रान बचन ना पाय ॥

हेमप्रभ की एक न चाली, दशरथ वार न जावै खाली ।
मयूर सन्मुख, अहिजिम भागें, त्यों सब भाजे, याके आगें ॥
पाके विजय ससुर गृह आये, वरवधु परिणय साज सजाये ।
लख, वरवधु, हरपे नर नारी, नख सिख रुचिर एकता सारी ॥

दोहा—वन, रण, वैरी, अगनि जल, शैलसिखर थलशुन्य ।
सुप्त, प्रमुत्तरु, विपम थल, रक्षक पूरब पुण्य ॥
दशरथ रणमँह एकले, वैरी हुते अनेक ।
हुता पुण्य जीते सबै, रखी विधाता टेक ॥

केकहिं परणि, अयोध्या आये, मिथुलापुर को जनक सिधाये ।
वांछित दान, यांचकन दीन्हा, परिजन पुरजन, अतिसुख लीन्हा ॥
पुण्ययोगइत नारद आके, लंका का वृत्तान्त सुनाके ।
किय सचेत वात्सल्य बताया, सचिव युक्ति कर, प्रान बचाया ॥

दोहा—आये अन्तःपुर नृपति, आईं रानी पास।
सादर स्वागत किय सबन, धरहिय परम हुलास॥
मनहु निधी ही मिल गई, या अमृत पिय पाय।
याविध, ह्वै सुख उन हृदय, वच से कह्यो न जाय॥

पूर्वैं रानिन, वृत्त न जानी, नृपथलपै मूरत पधरानी।
विदेश गमन नृपति ने लीन्हें, मूरत को अरि, विघात कीन्हें॥
यों न जानकें, अति अकुलाईं, सांचा वृत्त सचिव से पाईं।
तबही, चितमँह, धीरज धारीं, व्याकुलताई चितसे छारीं॥
दोहा—जीवन, दुर्लभ जगतमँह, सुलभ लोक साम्राज।
विछुड़ जात, पुन हू मिलत, गयेप्रान, सब त्याज॥
पिय जीवन पै आश धर, कबहुँ मिलेंगे आय।
मंत्री ने चतुराइ से, लीन्हें प्रान बचाय॥
नृप अभिषेक सभी मिल कीन्हा, धर्म प्रभावन, मँह चित दीन्हा।
या प्रसाद ही, जीवन पाये, सचिव युक्ति कर, प्रान बचाये॥
धर्म हेत, जा नारद लंका, आय सुनाई, रावणशंका।
होनहार विधि टरै न टारी, होय इंद्र या चक्री भारी॥
दोहा—सबमिल आये जिनभवन, दर्श, पूज जिनराय।
रचधर्मोत्सव मुदित ह्वै, नहिं हिय हर्ष समाय॥
जाविध होवै अवधिपुर, ताविध किय मिथुलेश।
रक्षे दोनों धर्मनें, काटे सकल कलेश॥

पुनदशरथ, अन्तःपुर आये, भ्रमण कथा सम्पूर्ण सुनाये।
कहा जनक भी साथ हमारे, विदेश भटके मारे मारे॥
लखा स्वयंवर इकथल मांही, हमहू बैठे, शंके नांही।
मोर गले वरमाला डारी, लख दुठ नृप, रिसयाये भारी॥

दोहा–रण करने उद्यत हुये, मैं भी साज सजाय।
केकइ किय सारथिपनो, रथ को वेग हकाय॥
याकी रण चतुराइ से, चला न अरि का जोर।
भागे सब रण थान से, हुई विजय तब मोर॥

विजयश्रेय केकइ ने पाया, याने ही मम प्रान बचाया।
चतुरइ से ये, रथ न चलाती, विजय श्रिया, ना करमँह आती।
"वच" देता हूं, मैं अब याको, चहै सोय, ये पावै ताको।
फलहि भविष्यत नांहि विचारा, सोचै समझै बिना उचारा॥

दोहा–बिन मर्यादित, "वच" वृथा, जामँह लगी न आड़।
धर्म, नीति, अविरोध बिन, "वच" बन तिलका ताड़॥
नांहि विचारा यों नृपति, बिन मर्यादित देय।
केकइ सबके अछतमँह, हर्षित होकें लेय॥

लख, "वच" पिय दिय, तिय ले लीन्हीं, पिय ने आड़ कछू ना कीन्हीं।
नाहि ज्ञात, कहुँ अनरथ मांगे, मिल "वच" पतिसे सबके आगे॥
है पति दाता, यांचै दारा, लेव, जसा मन होय तिहारा।
याविध छूट अनर्थक होवे, पै वह लेय, काह को खोवै॥

दोहा-सोच समझ केकइ कहै, हिय न चाह अभि लेव ।
रखों "वचन" भन्डारमँह, जब यांचों, तब देव ॥
सुन "तथास्तु" नृपने कहा, रखा "वचन" भन्डार ।
जब चाहो तब लीजियो, अक्षय "वचन" तिहार ॥

योंकह, पुन मन मांहि विचारै, नांहि ज्ञात क्या मांग उचारै ।
पै अब "वचन" विराधों नांही, होय अकीरत जगके मांही ॥
देकें "वच" पुन नृपति वहोड़ा, "वचन" अमूल्य देय द्रुत तोड़ा ।
यों चिन्तन कर, बात विसारी, केकइ सें, कछु नांहि उचारी ॥

दोहा-जगत स्वार्थमय नित लखहु, होय मोक्ष निस्स्वार्थ ।
जैसी की तैसी दरश, तामँह वस्तु यथार्थ ॥
विषय स्वार्थ दुखदाय नित, करत जगतमँह दाह ।
"नायक" रमत स्वरूपमँह, सत्यस्वार्थ अवगाह ॥

❀ इति चतुर्थम् परिच्छेदः समाप्तः ❀

अथ दशरथ की चारों रानियों को, क्रमशः पुत्ररत्न की प्राप्ति होने का वर्णन प्रारंभ

—वीर छंद—

दशरथ, सुख सों, काल वितावें, पुण्योदय सामग्री पाय ।
निशा समय, कौशिल्या रानी, स्वप्नें लखे, चार सुखदाय ॥
केहरि, रवि, शशि, गज ऐरावत, क्रमशः स्वप्न विषें, लखि लेय ।
प्रात उठत, बहु अचरज पाके, फल जानन को चित उमगेय ॥

दोहा—वेग आय, पति के ढिगै, मानो शचि ही आय ।
लखि दशरथ, हर्षित हुये, अर्धासन बैठाय ॥
पुन दशरथ ने यों कहा, कहो प्रिये, चित आस ।
प्रात होत ही, आगमन, क्यों है मेरे पास ॥

सुन कौशिल्या, हिय हरषाई, सुधा समान पीय, सुख पाई ।
कौशिल्या ने उत्तर दीना, रात्रि दिवस में, तुममँह लीना ॥
पतिव्रता हूं, तुमको ध्याऊं, स्वप्न मांहि किम, इमहिं लखाऊं ।
स्वप्नें का, सब वृत्त बताई, कहो फलाफल, ता नरराई ॥

दोहा—नृप कहि, तूं मोकों चहै, मैं भी चाहत तोय ।
धरैं परस्पर प्रीति जिमि, चंद्र, चकोरी होय ॥
नीर, बीज का, योग मिल, भूमि फलै दिन रात ।
तासम, तोकूं, सुत उपज, स्वप्नें मांहि, दिखात ॥

केहरि सम, सुत होवै तेरा, महाबली, बल धरै घनेरा।
रविसम दीपै, लोक मँझारै, चंद्र समान, सौम्यपण धारै॥
अडोल ऐरावत सम होवै, कर्मशत्रु को, क्षण में खोवै।
हो शिवगामी निश्चय जानो, यों स्वप्नें का, फल शुभ मानो॥

दोहा–यों फल, कौशिल्या सुनी, मुख वारिज, विकसाय।
मनो सूर्य सुत, अजु उपज, नहिं हिय हर्ष समाय॥
नव महिने, बीते जवै, उपजा सुत, सुखकार।
पद्म सदृश, आनन, नयन, "पद्म" नाम उचार॥

शुभ लक्षण युत, मंडित काया, शिशु ने, रविसम, तेज दिपाया।
सुत लखि दम्पति, उमगहि ऐसे, विधु विलोक, बढ़ वारिधि जैसे॥
परिजन, पुरजन, अति सुख, लीन्हा, वांछित दान, यांचकन दीन्हा।
वादित्रनध्वनि, अपरंपारा, गीत, नृत्य हो, गूंजै सारा॥

दोहा–नृप दशरथ, आनँद मगन, सुख सों, काल बिताय।
रिधि सिधि, संपति आपही, पुण्योदय तें, आय॥
हर, हलधर अरु प्रतिहरी, तीर्थंकर, चक्रेश।
पुण्योदय तें अवतरें, पदवीधारि, महेश॥

पहर पीछले, निशा सिरानी, देखी स्वप्न सुमित्रा रानी।
प्रथमस्वप्नमँह, सिंह लखाई, लक्ष्मि कीर्ति, नहवावन, आई॥
शैल शीस चढ़, दिशा विलोकै, समुद्रान्त, अवनी, अवलोकै।
रवि, किरणन युत, गगन सु मोहै, चक्र रत्न युत, छवि अति सोहै॥

दोहा—हर्षित हिय, पिय ढिग, गई, अर्धासन, पै बैठ।
वृत्त सुनाई, स्वप्न का, केशरि, मुख मँह, पैठ ॥
नृपति ढिगै रानी दिपै, शशि ढिग, रोहणि आय।
या हरि ढिग शचि है मुदित, मुख वारिज, विकसाय ॥

स्वप्नें का फल नृपति बतावै, केहरि समतर बल सुत पावै।
समुद्रान्त पृथ्वी का स्वामी, लक्ष्मी मंडित यशधर नामी ॥
रविसम दीप्ति दिपेगी ताकी, आज्ञा चालै सबमँह वाकी।
चक्ररत्नयुत छवि अति सोहै, नर नारिन के मन को मोहे ॥

दोहा—सुनत सुमित्रा है मुदित, सुत हो प्रखर प्रचण्ड।
चक्री, तसु व्यापै सुयश, बल हो तास अखण्ड ॥
नव महिने बीते जबै, है सुत सूर्य समान।
रत्नप्रभासम दिव्य तन, लक्षण उदधि प्रमान ॥

महाबलिष्ठ दिपै तसु काया, लोकश्रेष्ठ विधि गात बनाया।
शुभ लक्षण लक्षित तन धारा, यातैं "लक्ष्मण" नाम पुकारा ॥
इन्दीवरसम तन द्युति सोहै, सुन्दर सुभग श्याम मन मोहै।
सुत लखि दम्पति हरषे ऐसे, विधु विलोक बढ़ वारिधि जैसे ॥

दोहा—नृत्य गान वादित्र बज, पूरे चौक अपार।
मोतिन की झालर बँधी, बांधे वन्दनवार ॥
परिजन पुरजन है सुखी, उत्सव अधिक रचाय।
कीनी धर्म प्रभावना, भवनन ध्वजा चढ़ाय ॥

जन्में लक्ष्मण जबहिं यहां पै, है अशुकुन अरि बसे जहांपै।
कहां अवधिपुर कँह है लंका, होने अशुभ जतांय निशंका॥
यदपि विभीषण मनकी कीन्हें, अपनी शंका मिटाय लीन्हें।
पै विधि रेख टरी ना टारी, बंध निकांचित है दुखकारी॥

दोहा—इष्टन गृह शुभ शकुन है, अरि के गृह उत्पात।
हिताहितहिं के ज्ञान को, यों भविष्य बतलात॥
पुण्य पाप यदि असत हो, स्वर्ग नर्क विफलाय।
नेत्रन लख माने नहीं, तासे का वश आय॥

सुखी दुखी क्यों होंय ? विचारो, पुण्य पाप फल स्वयं सम्हारो।
जाने जस किय, तस फल चाखै, बोय बँबूर, चखै किम दाखै॥
काहे पुन दुख हेतु मिलावै, होय अशुभ पांछै पछतावै।
कोट ग्रन्थ का सार बताया, जो जस कीन्हे तस फल पाया॥

दोहा—पुण्य देय सुख, जगत मँह, पाप दुःख फल देत।
स्वर्ण लोह बेड़ी लखै, ज्ञानी करै न हेत॥
ज्ञानी आतम स्वरूप लख, पाप पुण्य विनशाय।
अचल अनूपम सुख लहै, पद अविनाशी पाय॥

जगप्रिय राम लखण दोउ भाई, क्रमशः नित नव वृद्धी पाई।
कोमलगात सुभग सुकुमारा, केशर चर्चित है तन सारा॥
चन्द्र सुधासम वयन निसारें, अनुपम लीला, दोउ विस्तारें।
है छवि दोउन की अति प्यारी, रूप निरख मोहें नरनारी॥

दोहा-केकइ गर्भ लहाइ पुन, जाया सुत सुखरास ।
भरत नाम ताका धरा, सब गुण कला निवास ॥
आदिनाथ का भरत जिमि, तिमि दशरथ का नन्द ।
जन्मोत्सव समतर हुवा, को बरणें आनन्द ॥

पुनः सुप्प्रभहु गर्भ लहाई, रविसम दीप्ति दिपै सुत जाई ।
नाम शत्रुहन सबहिं उचारा, बलिष्ट शरीर लहै सुख सारा ॥
लहें वृद्धि चारों ही भाई, शस्त्र शास्त्र की हुइ निपुणाई ।
भाग्योदय इक ब्राह्मण आके, चारों निपुण किये सिखलाके ॥

दोहा-इकदिन नृपढिगआयद्विज, गुण अतिशय प्रगटाय ।
शस्त्र शास्त्र विद्यान का, द्विज भण्डार दिखाय ॥
होय प्रभावित नृप तबहिं, सौंपे चारों बाल ।
सिखलाओ विद्यान को, करहों तुम्हें निहाल ॥

पुन पूंछा द्विज कँहते आये, सुन द्विज मंजुल वचन उचाये ।
सुनहु नृपति, निज वृत्त बतावें, पाप पुण्य का ठाठ दिखावें ॥
कपिलापुर शिव विप्र तहां पे, मैं सुत 'अरि' कहलांव वहां पे ।
लाड़ कुफल बहु अवगुण धारे, देंय उलाहन बरतीवारे ॥

दोहा-जब सुन ऊबे मात पितु, मोकों दिया निकास ।
महादुखी है निकस जब, कछू न मेरे पास ॥
राजग्गृह नगरी पहुँच, धनु-वेदि गुरु एक ।
ताढिग मैंने जायकें, विद्या गहीं अनेक ॥

हुआ निपुण सब शिष्यन मांही, मेरी समतर कोऊ नांही।
नृपति प्रशंसा सुनली ऐसी, हराय मम सुत एक विदेशी॥
सुनतइ नृप अति ही रिसयाके, तुरन्त गुरु को ढिगै बुलाकै।
रिसयुत गुरु से प्रश्न उचारा, परदेशी से ममसुत हारा॥

दोहा-गुरु नृपका मनतव्य लख, मारन का अभिप्राय।
कहा नृपति से विहँसके, कोऊ असत बताय॥
तउ भूपति को ना जँचा, कहा परीक्षा लेव।
मेरे सन्मुख सबहिन को, बता निशाना देव॥

स्वीकृत किय गुरु गृहमँह आया, मोकों नृप का रहस बताया।
पारीक्षों नृप ढिगै बुलाके, देव बताय निशान चुका के॥
यों सिखाय शिष्यनयुत आया, नृप सम्मुखें निशान बताया।
ता निशान को सबने छेदा, केवल मैंने नांही भेदा॥

दोहा-जान बूझ मैं चूक किय, नृप समझा अज्ञान।
हम सब कों नृप किय विदा, गुरू बचाये प्रान॥
निज तिय से गुरु ने कहा, सुता योग्य वर याहि।
द्विजसुत निपुण गुणज्ञ को, देवो सुता विवाहि॥

यों सुन गुरुनी गुरूहिं उचारी, काहे पूंछत राय हमारी।
प्रसव रक्षणी माय कहावे, शेप तात के हाथ रहावे॥
व्याही सुता कही ना रोकों, आशिप दीन्हा गवनन मोकों।
जासे नृपति लखन ना पावै, स्वारथ का सन्सार कहावै॥

दोहा–राजग्गृह से गमनकर, आय तिहारे पास।
यों दशरथ से गुरु कहा, विद्या कीन्ह प्रकाश ॥
सुन दशरथ प्रमुदित हुये, गुरु भक्ती दिखलाय।
कहा सिखावो सुतन इन, शस्त्र शास्त्र द्विजराय ॥

विदा कीन्ह गुरु, विहँसा राई, वा नृप की शठता विहँसाई।
गुणसम्पन्न लखत रिसयावै, सुनकर मोकों हांसी आवै ॥
विद्या आवै भाग्यन सेती, रंक राव का भेद न लेती।
कुँवर तनी ना विद्या आई, विरथा कोप्या चितमँह राई ॥

दोहा–दुरजन दुरगुण ही गहै, सदगुण देत वहाय।
जिमि मोरी की जालिमँह, घासपात रह जाय ॥
यातें ऐसा ज्ञात हो, हमें होन था लाभ।
वाके कुगुण निवास से, वाका हुवा अलाभ ॥

द्विज, नृप सुतनहिं शिक्षा दीन्ही, शस्त्ररु शास्त्र निपुणता लीन्ही।
राम लखण के बहु परकाशी, हुये दोउ सुत बहुगुण राशी ॥
भस्मढ़की पावक प्रगटाई, गुरु बयार शुभ सङ्गति पाई।
भरत शत्रुहन ने हू सीखी, उन दोउन सम, ना हो तीखी ॥

दोहा–जगमँह कर्म विडम्बना, अज्ञु बन गुरु नृप पास।
पूर्व था अति अवगुणी, मां पितु दीन्ह निकास ॥
उपादान बिगड़ा जबै, तब अवगुण ही जाय।
उपादान सुधरा तबै, गुण ही गुणधर होय ॥

लाड़ कुफल ना विद्या आई, हो उद्योगी हृदय समाई।
राम लखरण से सीखें यासे, को जाने गुण मिलता कासे॥
हर-हलधर से कीन्हे ज्ञानी, उनने याकी गुरुता मानी।
निपुण सुतन लख नृप हरषाया, सर्व श्रेष्ठ निधि मानो पाया॥

दोहा–गुरु को अतिही द्रव्य दै, चित सन्तोषित कीन।
आत्मनिधी हिय अमियसम, सुतन गुरू से लीन॥
द्रव्य ज्ञान धारण सहज, दुर्लभ भावग्ज्ञान।
"नायक" रमत स्वरूप नित, पावें पद निरवान॥

॥ इति पञ्चमः परिच्छेदः समाप्तः ॥

अथ भामण्डल और सीता के जीव का रानि विदेहा के गर्भ मँह आना, भामण्डल के पूरव भव, भामण्डल का देव द्वारा हरण वर्णन

वीरछन्द—

गौतम श्रेणिक प्रती उचारा, मिथुला नगरी सुभग सुहाय।
जनकराय तसु रानि विदेहा, गर्भउपाई हुइ सुखदाय ॥
सिय भामण्डल युगल गर्भ माँह, इक सुर ने अभिलाषा कीन।
जन्में शिशु, तसु हरकर हनहों, चाह दाह तब होय विलीन ॥

दोहा-यों सुन श्रेणिक प्रश्न किय, काहे सुर रिसयाय।
जातें यों अभिलाप किय, शिशु हर हनहों ताय ॥
किम शिशु का अपराध लख, करै देव यों भाव।
विना हेतु ना हो क्रिया, सुख दुख भाव कुभाव ॥

यों सुन गणधर गिरा उचारी, श्रवत मिटै अभिलाप तिहारी।
नगर चक्रपुर चक्रधर स्वामी, तास सुता चित्रोत्सव नामी ॥
भेजै पिता पठन चटशाला, पिङ्गल द्विज हू पढ़ तिहि शाला।
शाला माँह दुहु लगाय नेहा, इच्छा पूर्ति करन तज गेहा ॥

दोहा-शाला तें भागे दुहू, इच्छा पूरण काज।
आय विदग्धापुर निकट, रमें दोउ तज लाज ॥

तँहपै कुटी बनायकें, निशिदिन करें किलोल।
धिक धिक काम विकार यह, तजा शील अनमोल॥

काम दाह मेंटन चल आये, द्रव्य न किञ्चित सँगमँह लाये।
हो निवाह अब इत पै कैसे, कौन सहाय द्रव्य दे ऐसे॥
विपन जाय द्विज इन्धन लावें, बेंच खर्च निज काम चलावै।
रंच गिनें ना दुस्सह पीरा, चितमांही ना होय अधीरा॥

दोहा—एक समय पुरका नृपति, कुन्डलमन्डित नाम।
आय विपन, याको लखी, द्रुत विकार उठ काम॥
दूती, ढिगै पठायकें, महलन लई बुलाय।
काम वासना पूर्ति कर, दुहू किलोल मँचाय॥

जब विवेक हियतें नश जावै, आन मान मर्याद गमावै।
प्रथम द्विजहिं सँग, गृह तज भागी, अब नृप प्रेम लगावन लागी॥
हिये हिताहित नांहि विचारै, अपना परभव वृथा बिगारै।
पुन मो हित द्विज कष्ट उठावै, वनमँह जाके इन्धन लावै॥

दोहा—कुटी शून्य लखहै जबहि, कागति वाकी होय।
राजमहलमँह पैसवो, उचित नांहि है मोय॥
जगमँह काम विकार धिक, लखै न अर्थ अनर्थ।
विषय तृप्ति केवल चहै, रुलै चौरासी व्यर्थ॥

कष्ट भार लैके द्विज आया, कुटी निहारी सूनी पाया।
खोजी सब थल कहूं न पाके, जाय पुकारा नृप ढिग आके॥

हे नृप, कोउ नर नगरी मांही, हरली मम तिय मिलती नांही।
यों द्विज कहके रुदन मँचायां, नृप दै धीरज सचिव बुलाया॥

दोहा—नृप ने बोला सचिव से, हे मन्त्री सुन लेव।
कोउ हरी याकी तिया, खोज याहि को देव॥
संकेतत भटने कहा, अमुक मार्ग मँह जाव।
आर्यकान के संग मँह, खोजो ताको पाव॥

याविध सुन द्विज तत्क्षण भागा, खोजत फिरा पता ना लागा।
पुन दरबारै नृप ढिग आया, रुदनत नमत पुकार मँचाया॥
रुपित होय नृप तुरत निकासा, दुखित होय द्विज धरी निराशा।
ना समझै, है नृप ही दोषी, पय रक्षन मार्जारी पोषी॥

दोहा—मेह बरसते तृण जरै, बाडि खेत कूँ खाय।
नृपति करै अन्याय तो, न्याय कौन पै जाय॥
जस किय द्विज तस, फल मिला, कीन्ह पाप परिणाम।
हुवा सँघाती नृपति हू, कीन्ह अधमपन काम॥

भ्रमत फिरत द्विज वनमँह आया, दृष्टि पड़े तँहपै मुनिराया।
लख मुनि द्विज ने समता धारी, शीस नाय पुन गिरा उचारी॥
हे प्रभु, शिव का मार्ग बतावो, भवदधि बूड़त पार लगावो।
विषय चाह दव दाह जलावै, काविध शान्ति हिये मँह आवै॥

दोहा—याविध श्री गुरु सुन वयन, अमिय हितद उच्चार।
गहो भव्य या सीख को, दाह विनाशनहार॥

भ्रमता जीव अनादि से, साता पावै नांहि ।
नरभव पाके पुन रमत, विषय कषायन मांहि ॥

स्वर्ण थाल मँह, जिमि रज लेपै, पाय सुधा जिम चरणन लेपै ।
ऐरावत पै इन्धन ढोवै, सुरतरु लुनें कनक जिम बोवै ॥
चिन्तामणि जिम वारिधि डारै, काष्ट तरणि तज, उपल सँवारै ।
यों विपरीत करै दुखदाई, पछतावै, ना साता पाई ॥

दोहा–जहर खाय यदि अमर हो, काह सुधा पुन सेय ।
कर पाप यदि सुख लहै, पुण्य काह फल देय ॥
यातें सुख फल तूं चहै, त्यागो विषय कषाय ।
विन त्यागे इन दुहुन के, जीवन विरथा जाय ॥

निश्चय आतम स्वरूप विचारो, निश्चय हित व्यवहार सुधारो ।
निज स्वरूप निज, परमँह नांही, ताविध परका, है परमांही ॥
याविध श्रद्धा ज्ञान उपावो, आत्मरमण कर शिवपद पावो ।
मुनिपद कर्महिं ततत्क्षण नाशै, श्रावक क्रमशः कर्म विनाशै ॥

दोहा–मोह राग रुप भाव वश, रुला चुरासी मांहि ।
ताहि तजे विन भवउदधि, पार होत है नांहि ॥
यातें शीघ्र विभाव तज, धारो आतम स्वभाव ।
नरभव की हो सफलता, पद अविनाशी पाव ॥

द्विज के हिये ज्ञान रवि जागा, तिय विकल्पका द्रुत तमभागा ।
मेंटूं दाह हिये के मांही, किञ्चित शल्य रखूं अब नांही ॥

सुधा समान अमररस पीके, विषय न सेवूं अब मैं जीके।
ज्ञानांजन से नेत्र उघाड़ों, विषय कषाय हिये तें छांड़ों॥

दोहा—पतत भवोदधि से मुझे, हस्तालंबन देय।
श्रीगुरु परम दयाल ह्वै, निकास बाहर लेय॥
याविध चित सम्बोध कर, श्रीगुरु प्रती उचार।
प्रभो आप वच तरणि गह, उतरों भवदधि पार॥

योंकह पंच महाव्रत धारे, ह्वै निष्पृह शिर केश उपारे।
दुविध परिग्रह ममता त्यागी, मन वच तन से बना विरागी॥
जीत परीषह इकविस याने, शत्रु मित्र सुख दुख सम माने।
उग्र तपन को यानें कीन्हें, सम्यक भाव नांहि हिय लीन्हें॥

दोहा—कुन्डलमन्डित नृपति चित, सेवै विषय कषाय।
प्रिया कमलिनी, भृंग ये, यापै नित मड़राय॥
रखा न अंकुश चित्त पर, अति अन्यायी होय।
मनमानी नितप्रति करें, गति सारूं मति जोय॥

कुन्डलमन्डित हो अन्यायी, प्रजा अयोध्यहिं अतिहि सताई।
नृप अरण्य ता अवधा मांही, कुन्डलमन्डित शंकै नांही॥
गढ़ का अतिबल, गरजै यासे, नांही समझै कोउ को तासे।
कंटकसम अरण्य हिय सालै, रंच उपाय न यापैं चालै॥

दोहा—नृप अरण्य यद्यपि सबल, चलै न गढ़ पर जोर।
दाव परै छिप जात जिम, अंजन के बल चोर॥

या पुन केहरि अति प्रबल, मूप छिपै तल शैल।
ताका केहरि का करै, ना पकड़न की गैल ॥

याविध चिन्ता नृपहिय छाई, लहि चिन्ता, काया मुरझाई।
यों लख दलपति गिरा उचारी, कहहु नाथ क्या चिन्ता भारी ?
मोय अछत क्यों चिन्ता धारो, अब द्रुत मोकों आप उचारो।
चिन्ता की जड़ मिटाय देहों, तबही चैन हृदयमँह लेहों ॥

दोहा—सुन आश्वासत याविधै, तब नृप ताहि बताय।
कुन्डलमन्डित अरि सबल, गढ़बलतें इतराय ॥
करै उपद्रव नितप्रती, जनता को दुख देय।
यासे है मम चित दुखी, चैन न क्षण भर लेय ॥

सुनयों दलपति धीर बँधाई, कहै शल्य त्यागदो, राई।
ताहि बांध मैं, तुअ ढिग लाहों, तबहि आपको मुख दिखलाहों ॥
सुननृप, दलसज दिय हरषाकें, भेदी भेजे प्रथम तहांकें।
तेसबभेद तहां का लाये, दलपति को तसु वृत्त बताये ॥

दोहा—कुन्डलमन्डित नृपति हिय, चित्रोत्सवा सिवाय।
जागृत या स्वप्नों विषें, कछू न और सुहाय ॥
जिमि मधुछत्ता के विषें, नित माखी मड़रात।
नांहि सुहावै अन्य कछु, करै अहेरी घात ॥

अरिगण हू का ध्यान विसारा, आके लेहैं थान हमारा।
अरण्य दलपति निशंक जाके, बांधा तत्क्षण याको आके ॥

यदपि हुता बल, आयुध, सैना, तदपि फँसे थे तियसे नैना।
सारी सुधबुध भूला यातें, बन्धन पाया क्षणमें बातें॥

दोहा-नृप अरण्य के सन्मुखें, विदग्ध नृप को लाय।
विहँसत कहा अरण्य ने, क्यों उत्पात मँचाय॥
अनधिकार चेष्टा करी, यातें छांड़ो देश।
योंकह ताहि निकास दिय, रखा कड़ा आदेश॥

शस्त्र सजे सामन्त रखाये, जासे ये ना पैसन पाये।
नृप अरण्य की फिरी दुहाई, न्याय नीति की ध्वज फहराई॥
जनता को सन्तोषित कीन्हें, शासन अपना जमाय लीन्हें।
जस किय वानें तसफल पाया, तिय धन वैभव सबहिं गमाया॥

दोहा-कुन्डलमन्डित सचिन्त ह्वै, शोकित उरमँह होय।
विषय कषायन मग्न हो, सबही मैंने खोय॥
केवल मात्र शरीर ढिग, दूजा नांहि सहाय।
लखा पाप का फल प्रगट, याही भवमह पाय॥

हिये मांहि अति ही पछताया, मैंने खोटा कर्म कमाया।
काम अंध हो सुध बुध भूला, विष को खाय रैन दिन फूला॥
व्यर्थहिं वैर बड़ों से कीन्हा, ताफल वैभव गवाय लीन्हा।
पछतायें ना काम सुधारे, ना मिल वैभव वापिस सारे॥

दोहा-भूल भई मेरी घनी, चिड़िया चुग गई खेत।
भूमि नीर का योग मिल, बीज वृक्ष फलदेत॥

दुखमँह प्रभु को सब भजें, सुखमँह भजे न कोय।
सुखमँह प्रभु को सब भजें, दुख काहे को होय॥

याको दिखा न कोय सहारा, दुःखित होकें प्रभुहिं चितारा।
शरणागत प्रतिपाल कहावो, मेरे दुख को वेग मिटावो॥
चिंतै मोसम पापी नांही, चिन्त्य आय मुनि आश्रम मांही।
शिरनय मुनिप्रति गिरा उचारी, हे गुरु, मेंटो व्यथा हमारी॥

दोहा—धर्म स्वरूप बताव प्रभु, मोपै करुणा लाय।
लखगुरु यों दुःखित दशा, अमृत वयन उचाय॥
सुनहु भव्य, या धर्म ही, सदाकाल सुख दैन।
मेह छटत तिम पाप नश, सुखकारी दिन रैन॥

आत्म स्वरूप धर्म कहलावै, दर्श ज्ञान चारित्र लहावै।
सम्यक सांचा धर्म कहाया, आप रूप मँह आप समाया॥
लखो धरम की महिमा भारी, ताफल मिलै मुकति सुखकारी।
पुण्य किये तें सुरसुख पावै, पाप किये तें नर्कन जावै॥

दोहा—नर्क मांहि दुख भोगवै, सो जानें भगवान।
ता दुख से छूटन चहै, त्यागो विषय कपान॥
सुन मुनि के अमृत वयन, नृप मनमँह हरषाय।
धन्य धरम महिमा अगम, मुख से कही न जाय॥

मैंने वृथा मनुज भव खोयो, धर्म स्वरूप कदै ना जोयो।
मुनिव्रत धरन शक्ति मम नांही, कीन्ही श्रद्धा मैं हिय मांही॥

यों श्रद्धा धर, इततें चाला, पांव पियादा श्रम अति साला।
मातुल आश्रय में सुख पावों, यदि मैं ताके शरणें जावों॥

दोहा-यों विचार मातुल ढिगै, चला, धार सुख आस।
मारग श्रम तें मरण ह्वै, किय हिय मिथ्या वास॥
मनुज आयु तत्क्षण बँधी, गर्भ विदेहा आय।
चितोत्सवा ह्वै अति दुखी, ताका कथन बताय॥

चितोत्सवा नृप बन्धन देखी, महा अशुभ तब अपना लेखी।
चिन्तै व्यर्थहि गती विगारी, जो द्विज से मैं कीन्ही यारी॥
पुन तज, नृप से नेह लगाई, तासे हू अब भई जुदाई।
कोय किसीका नांहि सँघाती, है स्वारथ का सब जग साथी॥

दोहा-चितोत्सवा यों चिन्त्यवै, तजा मुझे सब कोय।
द्विज, नृप दुहुन विछोह ह्वै, काविध अब सुख होय॥
पुन समता को धार मे, आर्यिका ढिग आय।
वृतधर येहू मरण किय, सम्यक निधी न पाय॥

गर्भ विदेहा, येहू आई, कुन्डलमन्डित अब ह्वै भाई।
गर्भ मांहि, ते दोनों आये, भ्रात भगिनि का नाता पाये॥
धिक धिक कर्मन गती कहाई, उस भव यारी, इस भव भाई।
को जानें? क्या विधिवश होवे, ज्ञानी, विधिको जड़से खोवै॥

दोहा-आयु न बांधी थी दुहुन, नर्क, देव, तिर्यंच।
पहिले बँध जाती यदी, नांहि सरकती रंच॥

घट बढ़ चह होवै जसो, पुण्य पाप परिणाम।
अन्तसमय बँध दुहु उपजे, मनुज आयु के धाम॥

चितोत्सवा यदि तप ना धारै, कुभाव कीन्हें नांहि सुधारै।
नर्कन मांहि नियम से जाती, कबहुँ मनुज भव नांही पाती॥
सम्यक धर्म तऊ ना पाई, यातें गती मनुज मँह आई।
कुन्डलमन्डित, भाव सुधारा, यातें येहू नरतन धारा॥

दोहा—है भावन का खेल सब, लाख चुरासी मांहि।
पुण्य पाप वश भव भ्रमै, साता पावै नांहि॥
वह द्विजहू मुनिपद धरा, नहिं लह सम्यग्ज्ञान।
अन्त समाधी धारकें, भवनत्रिक मँह आन॥

अवधिज्ञान तें पूर्व चितारा, लख ये उपजा अरी हमारा।
दूती भेज तिया बुलवाई, मैं ता ढिगहिं पुकार मँचाई॥
नृपपद पाय मूढ अति फूला, हमें झुलाय दुःख का झूला।
किसमिसाय वा वैर भँजाऊं, यमपुर याहि अभी पहुँचाऊं॥

दोहा—गर्भ मांहि हनहों अभी, तो रानी मर जाय।
बिना प्रयोजन वा मरें, वैर न वासों आय॥
जन्मत हर, हनहों इसे, यों विचार सुर कीन।
मीड़ै अपनें हाथ दोउ, चितमँह अतिरिस लीन॥

प्रसव समय की वेला आई, क्रमशः सुत अरु कन्या जाई।
जन्म महोत्सव होन न पाया, गुप्त होय सुर, शिशुहिं उठाया॥

सोचै, पटक शिला पै मारों, या मर्दन कर प्रान निसारों।
यों विकलप हिय मांही छाया, पुन विवेक हू याविध आया ॥

दोहा-पूर्व भवे मैं मुनि हुता, रच्छे जीव अपार ।
अब शिशुवध कैसे करों, महा अधम दुखकार ॥
अघ दैवबल पाय यदि, करों घोर यह पाप ।
तो दुरगतिमँह जायकें, सहों असह सन्ताप ॥

यों विवेक सुर, हिय उपजाया, दया भाव अब हियमँह छाया ।
शिशुवध कुभाव द्रुत तज दीन्हा, रच्छण भाव हृदयमँह लीन्हा ॥
वस्त्राभरण शिशुहिं पहिनाके, काननमँह कुण्डल चमकाके ।
नभतें ताहि दिया खिसकाई, परणी विद्यहिं संग लगाई ॥

दोहा-पतत पत्रवत तब शिशू, इकखगपति लख लीन ।
नखतपात या शशि किरन, याविध संशय कीन ॥
चन्द्रगती नामा खगप, रथनुपुर का स्वामि ।
कारण वश आया विपन, पुत्र शून्य था धाम ॥

जा समये शिशु, महिपै आया, तबहि खगप, निश्चय कर पाया ।
शिशु ना, रविही महिपै आये, ऐसा वाका तेज लखाये ॥
मनमोहन छवि लखकर वाकी, सुभग रुचिर मोहँ द्युति ताकी ।
मुदित होय नृप तुरत उठाया, पुलक हृदय द्रुत गृहमँह लाया ॥

दोहा-शयनी तिय तसु जंघ बिच, शिशुको दिय पोढ़ाय ।
मनहु प्रिया ही जाय शिशु, विहँसत ताहि जगाय ॥

उठहु प्रिये तुम शिशु जनो, सुन्दर सुभग कुमार ।
रविसम याकी दीप्ति दिप, द्युती चन्द्र उनहार ॥

पियवच विस्मित श्रवण करी ये, उठत लखत पिय सत्य कही ये ।
रविसम दीप्ति शशी द्युति सोहै, निरखत छवी रुचिर मन मोहै ॥
चिन्तै ये शिशु कहँतें आया, मैं हूं वन्ध्या सुत किम जाया ।
मंजुलवच तव पतिहिं उचारी, काहे हांसी करत हमारी ॥

दोहा—हूं वंध्या किम सुत जनूं, काह करत हो हास ।
लाय सुभग सुन्दर कुँवर, पौढ़ाया मम पास ॥
सुन नृप विहँसत वयन कह, सुतको तूं उपजाय ।
गूढ़ गर्भ तोहे हुतो, प्रगट होन ना पाय ॥

सुनत प्रिया, पुन पतिहिं उचारी, कानन कुन्डल चमकें भारी ।
नर खगपति के गृहमँह नांही, जिमि सोहें शिशु काननमांही ॥
मोकों जँचत कोउ सुर लाया, वाने ही कुन्डल पहिराया ।
पुण्य योग तुम, याशिशु पाके, वेग धरा मेरे ढ़िग लाके ॥

दोहा—श्रवत प्रिया के यों वयन, खगप हिये हरषाय ।
कहै, प्रिये तूं सत्य कह, ज्यों अनुमान लगाय ॥
भाग्यउदय वंध्यापनों, है शिशु मेटनहार ।
प्राप्त कथन तोकों कहत, सुख उपजावनहार ॥

कारण पाय गया वन मांही, गगन पतत लख समझा नांही ।
कै विद्युत या नक्षत दिखावै, नभसे पतत मही पै आवै ॥

ज्योंही ये शिशु सहिपै आया, त्योंही मैंने वेग उठाया।
सुलक्षण शिशु, प्रसन्न है आनन, चमक रहे हैं कुन्डल कानन॥

दोहा—अनुपमेय हर्षित हुआ, तोढ़िग द्रुत ले आय।
वंध्यापनहिं मिटावने, दीन्हा शिशु पौढ़ाय॥
वंध्यापन नाशकशिशू, पुण्ययोग, तुम लीन्ह।
गर्भ दुःख, शिशु माय सह, जन्मत तोकों दीन॥

विपुल पुण्य अब प्रगटा तेरा, मम सन्मुख सुर लाके गेरा।
दिपै सूर्यसम, आभा भारी, सुन्दर छवि, नयनन बलिहारी॥
शुभ लक्षणयुत, शोभै काया, जिमहिं रत्न ना छिपै छिपाया।
प्रिये वेग, प्रसूतिगृह जाके, प्रगट करहु, सुत लहा जनाके॥

दोहा—नृपनेहू सबसे कहा, परिजन पुरजन माहिं।
गूढ़ गर्भ रानी लहै, सुत उपजा है ताहि॥
योंसुन सब प्रमुदित हुये, उत्सव रचा महान।
लीन्ह अपरिमित हर्ष हिय, को कर सकै बखान॥

तत्क्षण धाय खगप बुलवाई, सौंपा शिशु, हिय हर्षत राई।
वाञ्छित दान यांचकन दीन्हा, हुआ न उत्सव, त्यों नृप कीन्हा॥
गान नृत्य ध्वनि अपरम्पारा, मनुशशि,शिशु,कुल गगनउजारा॥
रथनूपुरमँह मँचा महोत्सव, कँह जन्मा, अरु कँह जन्मोत्सव॥

दोहा—विधिवश हुई विडम्बना, प्रथम देव रिपु कीन।
शिशु हर पुन चह हननतिहिं, पै न आयु तसु छीन॥

भाग्यवान, आयू प्रबल, सुरहू रक्षो याहि।
"नायक" रमत स्वरूप मँह, होय न बाधा ताहि॥

इति पष्ठमः परिच्छेदः समाप्तः।

अथ भामण्डल के हरण का, मिथलापुरी विषें शोक वर्णन।

वीरछंद—

जनें विदेहा निरख सुता सुत, हियमँह फूली नांहि समाय।
रतन जड़ित पलनन के मांही, सुखित होय दुहुको पौढ़ाय॥
पुनः लखै तँहपै सुत नांही, एक अकेली सुता दिखाय।
सुत वियोग लख व्याकुल होकें, शोकै, अति ही रुदन मँचाय॥

दोहा—किय आक्रंदन अति घना, मानो कुरुचि पुकार।
लोचन अश्रु बहावतें, मनु नद बहत अपार॥
दुखयुत उचरी, विधि प्रती, यों उलाहना देय।
है कठोर चित निरदई, तूं मम सुत हर लेय॥

हिये विवेक तनक ना लाया, सबजग तजकें मोय सताया।
ग्रेद्य शस्त्र घला है तेरा, पुरै न घाव पुराया मेरा॥

रवि सुत उदय, अस्त किय तूंनें, मेरे सबसुख किये विहूनें।
रत्न देयकर, छुड़ाय फेंका, गिरा सिन्धुमँह, याविध मेंका ॥

दोहा-कँह खोजो कँह पाँव सुत, सिन्धू अगम अपार।
नैया पड़ि मझधारमँह, कौन उतारै पार ॥
याविध उचर, अचेत ह्वै, गिरी मूरछा खाय।
तरु का आश्रय नशत जिमि, गिरै लता मुरझाय ॥

ज्योंही खबर जनक ने पाई, पुत्रशोक, तिय मूर्छा खाई।
त्योंही वेग तहां पै आया, तिय प्रति हिम उपचार कराया ॥
तबहिं सचेती शोकित रानी, जनक कही, अमृतमय बानी।
अहो प्रिये, तज व्याकुलताई, तसु ढुँढ़ाय द्रुत, लेंव मँगाई ॥

दोहा-भाग्यवन्त तेरा तनुज, क्षीण आयु मत जान।
गतपुण्यी ना अवतरै, कांच न हो, मणिखान ॥
कर्म उदय बलवन्त लख, ताके मेंटनकाज।
धर्म भाव हिय विस्तरें, प्रगटै सुःख समाज ॥

रानी प्रति यों धैर्य धराया, पत्र अयोध्यहिं तुरत पठाया।
तामँह याविध लिपि कर दीन्हा, जन्मत बाल कोउ हर लीन्हा ॥
दुखी हुये सबही नर नारी, तबही में याविधं विचारी।
धीरज, धर्म गही शरणाई, पुन मिन्तर की पारी आई ॥

दोहा-प्रथमहिं परखा धैर्य को, होंवे विपदा दूर।
याबल सब विपदा नशत, आंवें केतक भूर ॥

आदिनाथ मुनिपद गहा, धर छह मास उपास।
अवधि बीत वेहू फिरे, पुन बीता छह मास॥

आदिनाथ हू थिरता धारी, अन्तराय की विपदा टारी।
बाहूबल जब तपधर लीन्हा, हलन चलन सबहिन तजदीन्हा॥
एक बरस तक तपधर ठांड़े, ग्रीषम वर्षा चह हो जाड़े।
धीरज तें नशि विधि विपदाई, लीन्हा मोक्ष मिली सफलाई॥

दोहा-सनतकुँवर चक्रेश ने, जब दीक्षा गह लीन।
अशुभोदय ने देह मँह, घोर रोग कर दीन॥
लीन्ह परीक्षा सुरन नें, धर मुनि धैर्य अपार।
मिटा अशुभ पुन द्रुत तबहिं, कीन्ह कर्म का क्षार॥

मिल पद इंदर अरु अहमिन्द्रा, लह लोकोत्तर सुख निर्द्वन्दा।
सबमँह गौरव धीरज हीको, जीतै येही मोह अरी को॥
यातें हमहू धीरज धारा, हरागयासुत मिलै हमारा।
दूजे धर्म परीक्षा कीन्हें, याबल विपदा सब हर लीन्हें॥

दोहा-जांचें सुरतरु देय सुख, चिन्तत, चिन्तारैन।
बिन जांचें, बिन चिन्तवें, धर्म सकल सुखदैन॥
तीर्थंकर चक्रेश हू, शरण धर्म का लेंयँ।
लोकोत्तर सुख भोगकें, कर्म नाश कर देंयँ॥

निश्चय धर्म आत्म सुखकारी, भेद धर्म आतम व्यवहारी।
दोनों की हम कीन्ह परीक्षा, जासों नाशै सबही ईक्षा॥

याविध सेती धर्म सदा तें, विपदा टारै सर्व तरातें।
तृतिय परीक्षा, मित्र तिहारी, हे नृप दशरथ, अब तुम धारी॥

दोहा—जगमँह दुर्लभ मित्र जनु, जो विपदा, दे टार।
निज स्वारथ के साथवे, बनते मित्र हजार॥
तुम सुमित्र जन्मत भये, वेग ढिंग मम आव।
हरचो पुत्र द्रुत खोज तुम, विपदा शीघ्र नशाव॥

दशरथ ढिंगै पत्र भट लाया, पढ़कें दशरथ अश्रु बहाया।
चिन्तें जनक मित्र है सांचा, पत्र खोलकें पुन पुन बांचा॥
को दुठ, मितु पै विपदा डारी, है वह सांचा श्रद्धाधारी।
अशुभ विपाक महा दुखदाई, होनहारता अमिट कहाई॥

दोहा—चिन्तयत दशरथ गमन हित, रथपर ह्वै आरूढ़।
आय मिले द्रुत जनकसे, विपति विदारन गूढ़॥
करी भेंट दशरथ जनक, गए सुधबुध दोउ भूल।
मित्र मिलन अनुपम सुखद, सुख दुख मँह अनुकूल॥

दशरथ जनक मित्र दोउ चाले, सेवक खोजत फिरत निराले।
जल थल अम्बर सब दिखवाया, सुत का खोज कहूं ना पाया॥
बोले दशरथ, यों मृदुबानी, धीरज धरहु मित्र सुज्ञानी।
इकदिन मिलहै पुत्र तिहारा, यांसुन सबनें धीरज धारा॥

दोहा—कर्मजन्य सुख दुख सबै, भुगतें छूटै नांहि।
जगपरिवर्तन शील जनु, सुख सांचा शिव मांहि॥

पुरुपारथ से शिव मिलै, बिन पुरुपारथ नांहि ।
यातें शिव पुरुपार्थ कर, रमों आत्मसुख मांहि ॥

जनक सुता का नाम उचारा, सीय सिया सीताहु पुकारा ।
क्षमा भूमि सम गुण गहराई, नित नव वृद्धि शशी सम पाई ॥
कमल वदन सुन्दर छविसोहै, नर नारिन के मन को मोहै ।
सरल स्वभाव सरसमृदु वैनी, चाल हंसिनी सम मृग नैनी ॥

दोहा—लखी सिया यौवनवती, जनक चिन्त्य मन मांहि ।
ब्याह रचूं श्रीराम सँग, यामँह संशय नांहि ॥
राम समान न आन जँच, ज्यों सीता, त्यों राम ।
"नायक" रमत स्वरूपमँह, पहुँचावै शिवधाम ॥

❀ इति सप्तमः परिच्छेदः समाप्तः ❀

अथ श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मण की म्लेच्छों से युद्ध मँह विजय, ताका माहात्म्य वर्णन

—वीरछन्द—

जनक विचारी सिय परिणावन, राम संग कीन्हा निरधार।
राम महतपन काविध लेखा, यातें याविध कीन्ह विचार॥
विनवत श्रेणिक प्रश्न उचारा, सुन गौतम यों उचरी बान।
मनो चंद्र से, अमृत बरसै, तिम मुख शशि, वच अमिय समान॥

दोहा—सुन श्रेणिक श्रीराम यश, नृपति जनक लख लीन्ह।
यासे प्यारी सिय तबहिं, परिणावन मन कीन्ह॥
बिन निमित्त, ना परिणमें, जीव जगत के मांहि।
होत निमित ना शिव विषें, पर उत्पादक नांहि॥

नगरी नामक मयूरमाला, नृपअंतरगत तहां विशाला।
सभी मलेच्छ, तहां के वासी, दुष्ट भयंकर निर्दय रासी॥
कीन्ह चढ़ाई सैन्य घनेरा, आके जनक पुरी को घेरा।
नगरी घिरी जनक जब देखी, विकट समस्या चितमँह लेखी॥

दोहा—टीड़ी दलसम म्लेच्छ अय, पुरी घिरी चहुँओर।
विजय प्राप्त करबो कठिन, अरि का ओर न छोर॥
यातें लिखधूं दशरथहिं, मिन्तर बली प्रचंड।
अरीदमन कर सकत जिमि, तम नाशै मार्तंड॥

वेग दशरथहिं, पत्र लिखाके, भेजा दूत, देय ढ़िग आके।
याविध वृत्त लिखा था तामें, म्लेच्छ दल से घिरा यहां मैं ॥
प्रजा भयातुर अति भय खावै, धैर्य धरावत हू अकुलावै।
विह्वल हुये सभी नर-नारी, रक्षो मोकों शरण तिहारी ॥

दोहा—महाबली निशिचर निकर, किये देश बहु ध्वंस।
वर्ण व्यवस्था मेंट, किय, धर्म, कर्म निर्वंश ॥
गौ, महिषा, नर भखत वे, शेष रखें कछु नांहि।
श्रावक साधू पुर जनन, सब कंपें चित मांहि ॥

मेरे अछत प्रजा दुख पावै, या चिन्ता दिन रैन सतावै।
विपति, मित्र विन कौन निवारै, पाती भेजी ढ़िगै तिहारै ॥
वेग आयकें, विपति निवारो, राजपाट, मैं, सभी तिहारो।
कहा लिखें, कछु लिखा न जावै, लिपी करन मँह हाथ कपावै ॥

दोहा—पढ़त वृत्त, दशरथ उचर, शीघ्र मित्र ढ़िग जांव।
विपति निवारहुँ मित्र की, अरि से भय ना खांव ॥
तुरत बुलाकें राम को, मित्र विपति समझाय।
विपदग्रस्त मम मित्र है, वेग निवारों जाय ॥

जल पय सम, हम दुहुन मिताई, जिम जन कोउ पय धरा कढ़ाई।
अग्नी पर धर दीन्हा ताको, पय अकुलाया लखकर याको ॥
व्याकुल लख द्रुत नीर उचारा, मैं ना तजहों संग तिहारा।
रहों संग तुअ आंच न आवे, जब तक मेरा प्रान न जावे ॥

दोहा–सुनत मित्र के अमिय वच, चीर धीरता लीन।
तेज आंच ज्योंही लगी, जरा नीर ह्वै चीन॥
जरा मित्र लख चीर ने, लीन्ही तुरत उफान।
कहां मित्र मेरा गया, जल है पयका प्रान॥

पय उफनाई, प्रभु ने जानी, तानें डारा झट ही पानी।
नीर मित्र को, जब पय देखा, तब उफान तज अति सुख लेखा॥
यों घनिष्ट हम दुहुन मिताई, मिटावँ विपदा मितुपै आई।
पहिले अपना प्राण गमाहों, मिन्तरपन कर्त्तव्य निवाहों॥

दोहा–सुनत राम, पितु के वयन, विनवत शीस नमाय।
मोय अछत, किम गमन कह, अनुचित वयन उचाय॥
मूषक पै कोपै हरी, जाय हनन पुन ताहि।
कौन वीरता सिंह की, को परशंसै वाहि॥

सुनें वीर वच, पितु प्रमुदाया, हिय लगाय पुन इमहिं उचाया।
लख किशोरवय भेजों नांही, सहसा गमन करो रण मांही॥
तँह अरि, आयुध मारें भारी, ना झेलन की शक्ति तिहारी।
मोमन धीर धरै ना, यैसे, भेज तुम्हें यूं, रणमँह कैसे॥

दोहा–सयुक्ति वच सुन राम तब, विहँसत दीन्ह जबाब।
मुक्ताफल लघु होय तउ, तजत न अपना आब॥
बाल सूर्य जब तिमिर हर, हरि शिशु गजहिं विदार।
वीरवंश के बाल हम, करें अरिन का छार॥

पावक कण हू जंगल जारै, या दारू का गंज विदारै।
लघु मुनि हू द्रुत कर्म नशावै, शक्ति न थोड़ी कबहुँ, कहावै॥
मणी खान मँह कांच न जन्मैं, कौन कमी लखि तात, सुतनमैं।
यातें आशिष अपनी देवो, विनय हमारी मान सुलेवो॥

दोहा—लखी सुतन की वीरता, अमिय वयन सुखदाय।
न्याय नीति उचरत प्रबल, कास निवारी जाय॥
शशी दोज की ज्योति हू, पूरणमासी होय।
यातें सुतन प्रताप अब, रोक सकै ना कोय॥

वीर नरन की रीति उचारें, क्षात्र वृत्ति लख धीरज धारें।
अतिशय पुण्य दुहुन ने धारो, तब को अरि, इन मारनहारो॥
प्रेम विवश हिय विषाद छाया, सजल नयन मृदुमन सकुचाया।
सेनानी को तुरत बुलाये, सजा सैन्य सुत संग पठाये॥

दोहा—मात पिता पद पद्म नमि, राम लखण दोउ भाय।
संग सैन्य चतुरंग लै, चले हृदय हुलसाय॥
इनके पहुँचत पूर्व ही, जनक कनक दोउ भ्रात।
आय डटे रण थानमँह, लख अरि का उत्पात॥

जनक कनक दोऊ अति वीरा, चलाए इनने अगणित तीरा।
युद्धमँचा अतिही घनघोरा, अपार शस्त्र चले दुहु ओरा॥
प्रबल मार से, अरिहिं विदारे, अगणित गय हय सुभट सँहारे।
तो भी रिपु अगणित समुदाया, मानो प्रलय काल सज आया॥

दोहा-गजारूढ़ दोनों नृपति, जनक कनक बलवान ।
कुपित काल सम कर प्रलय, कीन्ह युद्ध घमसान ॥
अतुल श्रमित दोउ नृपन तन, रहे स्वेद कण छाय ।
आय मिले ताही समय, राम लखण दोउ भाय ॥

जनक कनक लख यों हरपाये, मृतक समय पर, अमिय पियाये ।
लखै तृपातुर, शीतल नीरा, व्याधि असाध्य, हरै कोउ पीरा ॥
लखकें चंद्र, चकोर सुहावै, गर्जत मेह, मयूर लखावै ।
त्योंही सुखित भये दोउ भाई, उन दुहु आके धीर बँधाई ॥

दोहा-जनक कनक सुन, इन वयन, मनु अमृत वरसाय ।
अशुभ उदय उमड़ी वटा, धर्म पवन विघटाय ॥
रथारूढ़ राघव लखण, दिपते सूर्य समान ।
धवल छत्र शोभै अतुल, शस्त्र सुसज्जित आन ॥

राम लखण, का तेज लखाये, सारे अरिगण द्रुत थराये ।
अष्टमचंद्र दुहुन कों जाना, ज्येष्ठ सूर्य मध्याह्न दिपाना ॥
तव को समरथ सन्मुख आवै, रवि को लख जिमि तम भग जावै ।
तीक्ष्ण वाण दुहुन ने मारे, अगणित मत्त, हय, सुभट सँहारे ॥

दोहा-कानन कुन्डल हार हिय, सिंहध्वज फहराय ।
ढुरें चँवर, दुहु शीश पर, शोभा कही न जाय ॥
मनु सुरपति ही आय दुहु, मनमोहन दुहु रूप ।
अतिशयपुण्य प्रतापतें, कँपा निशाचर भूप ॥

क्षणमँह रिपुदल मार भगाया, जिमि गयंद कदली वन ढाया।
युद्ध केलि बहु भांति मँचाई, फिरी अरिन पै राम दुहाई ॥
लक्ष्मण खरतर बाण चलाये, मेह गर्ज मनु, जल बरसाये।
क्षणमँह गयहय सुभट सँहारे, अगणित हनकें महिपर डारे ॥

दोहा-शार्दूल विक्रीड़ सम, दुर्निवार दुहु वीर।
विकल मलेच्छन दल हुवा, चलें तीर पर तीर ॥
लक्ष्मण बाण प्रहारतें, कटें अरिन के शीश।
शत सहस्र की को कहै, डारे अगणित पीस।

म्लेच्छ भेष दिख निपट निराला, पहिरें तरु वल्कल मृगछाला।
असह भयंकर शब्द उचारें, घटा समान कृष्ण तन धारें ॥
इक लक्ष्मण पर, सबमिल आये, चहूंओर तें शस्त्र चलाये।
मेह घटा ज्यों जल बरसावै, शैल शिखर ना ढाहन पावै ॥

दोहा-लखण वीर निज शस्त्र तें, सबके निष्फल कीन।
श्रावण भादों वृष्टि सम, अपनें बरसा दीन ॥
भगी रिपुन की सैन्य द्रुत, रवि सन्मुख तम भाग।
अतुल्य विक्रम लखण मनु, अरि वन दाहन आग ॥

लखा म्लेच्छपति, निजदल भागे, कोय न ठहरत याके आगे।
तबहिं तुरत लक्ष्मण पै धाया, आके मारामार मँचाया ॥
तीक्ष्ण बाण लखण पै छोड़ा, तत्क्षण लक्ष्मण का रथ तोड़ा।
तब लक्ष्मणहिय अतिरिप छाई, महा भयंकर मार मँचाई ॥

दोहा-वन भस्मे दावाग्नी, तिम किम अरिगण क्षार।
वँहसे राघव ने तुरत, मारे बाण अपार ॥
मनुअष्टापद आय दोउ, किय सिहन दल चूर।
कायर हो भागे रिपू, कोय बना ना शूर ॥

जनक कनक लख, अरिसब भागे, कोय न ठहरा इन दुहु आगे।
मेह घटा सम अरिगण छाये, हो बयार सम, द्रुत विघटाये ॥
प्रमुदत दुहु हिय लगाय लीन्हें, विरद बखान दुहुन का कीन्हें।
का उपमा दें बताय जैसे, सुने न देखे, जगमँह यैसे ॥

दोहा-मित्र निबाही मित्रता, यैसे सुतन पठाय।
बूड़त नैया सुतन नें, दीन्ही पार लगाय ॥
यदी न आते वीर दोउ, धर्म कर्म नश जात।
जियत बचत न कोय भी, उन दुष्टों के हात ॥

टीड़ी समतर अरिदल छाया, प्रबल वायु बन द्रुत विघटाया।
जैसे गजगण आय चिघाड़ें, तिनको हनहरि, विकट दहाड़ें ॥
अहिगण आय अतिहि फुनकारें, मयूर क्षणमँह तिन्हें निवारें।
यों उपमत दुहु विरद बखाना, मित्रोपकारहिं अति ही माना ॥

दोहा-साधू श्रावक पुरजनन, रक्षे रक्षक होय।
पुण्य पुञ्ज संचय कियो, बरणि सकें ना कोय ॥
नृप दशरथ, तसु सुतन दुहु, विक्रम कह्यो न जाय।
धर्म कर्म रक्षा करी, सुयश रह्यो जग छाय ॥

प्रमुदित राम लखण शिर नाये, पुन अपना वचनामृत प्याये।
अहो आप गुरुजन हो मेरे, आयस देव पुत्र हम तेरे ॥
जाविध हैं मां पितु गृह मांही, तैसइ इतपै संशय नांही।
घाट न वाढ़ दुहुनमँह जानों, आपहु पुत्र आपनें मानों ॥

दोहा–सुनत जनक, राघव वयन, अतिहि प्रफुल्लित होय।
चिन्तै, याको द्यूं सिया, यासम वर ना कोय ॥
कनकहु मनमँह चिन्त्यलिय, सुता लखण को देयँ।
यों निश्चय किय दोउ नृपन, अतिहि हर्ष हिय लेयँ ॥

जनक कनक गृह किय पहुनाई, वढ़ा प्रेम नित नव अधिकाई।
कर प्रस्थान अयोध्यहिं आये, परिजन पुरजन देखन धाये ॥
गायन वादन ह्वै अति भारी, किया महोत्सव पुर नर नारी।
वांछित दान यांचकन दीन्हें, हर्ष अपरिमित हियमँह लीन्हें ॥

दोहा–विजय श्री प्रापति हुई, गुरु प्रताप रणमाँहि।
गुरु आशिप सम जगत मँह, कल्पवृक्ष हू नांहि ॥
मात पिता गुरुजन प्रती, बोले इमि दोउ धीर।
मानो अमृत सिंचवें, रवि प्रताप वरवीर ॥

मात पिता ने हृदय लगाये, गुरू जनन से आशिप पाये।
नादो विरदो दुहु जगमांही, तुमसम बलधर जगमँह नांही ॥
श्रवत दुहू हियमँह हरपाये, विधु वारिधि की उपमा पाये।
तीन भुवन की मनु निधि पाई, सुखी हुये तासम दुहु भाई ॥

दोहा—विपुल बढ़ाई कर नृपति, पुन पुन आशिष दीन्ह।
पुन पुन नमि पितु पद्ममँह, प्रेम परस्पर लीन्ह॥
अतिशय पुण्य महात्म्य लह, जगमँह पुण्य प्रधान।
"नायक" आत्म प्रधान कर, वही लहै शिवथान॥

इति अष्टमः परिच्छेदः समाप्तः।

अथ सियरूप निरखनार्थ नारदजी का आगमन: पुन रुपित सिय का चित्रपट, भामंडल के ढिग मेल्हने से मोहित होना जनक हरण सीता स्वयंवर, श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण द्वारा विद्यामयी धनुषों का चढ़ाया जाना आदि वर्णन

—वीर छंद—

राम पराक्रम श्रवणत नारद, प्रमुदत निशिदिन गुणयश गाय।
राम कथारत रहे निरन्तर, चहुंओर कीरत प्रसराय॥
कन्या देहौं जनक विचारी, यह किम रूप, शील, गुणखान।
इसहि सिया को जाके लख ल्यूं, योंहिय उठी उमंग अमान॥

दोहा-हिये उमंगत गमन किय, मिथुलापुरमँह आय।
जनकहिं गृह प्रविशे जवै, सिय की छविय लखाय॥
अनुपम सुपमा सीम लख, प्रमुदत हिय सुख लेय।
सकुच पुलक पुन पुन निरख, विधु, वारिधि उमगेय॥

सिय दर्पणमँह आनन देखै, निरख निरख पुन, हिय सुखलेखै।
ढिगमँह पांछे नारद आया, पड़ि दर्पणमँह नारद छाया॥
जटाजूटयुत छाया देखी, अतिहि भयावह हियमँह लेखी।
पटक आरसी तत्क्षण भागी, रुदनी, शब्द मँचावन लागी॥

दोहा-ह्वै कम्पित कच जूट लख, सिया न धीर धराय।
ता पांछे नारद लगे, छवि से तृप्ति न पाय॥
गवनी रुदनत सभय सिय, द्वारपालि लख लीन।
नारद मांहि अपरचिती, यातें वर्जन कीन॥

ठहरो, तुम मत अन्दर जावो, ऐसा वाने हुकम लगावो।
सुनतइ नारद अति रिसयाया, सियहित अतिहि अवज्ञा पाया॥
तव वीछू सम डंक सम्हारा, किसमिसाय कर वयन उचारा।
हटजादूर, जान दे मोकों, नातर मूकी मारों तोकों॥

दोहा-यों सुन वह ह्व कुपित हो, अति ही रार मँचाय।
नारद उमगे तिहिं हनन, वाहू सुभट वुलाय॥
सुनत टेर, आये सुभट, शस्त्र सजे वहु वीर।
ओंठ डसत भृकुटी चढ़ीं, द्रुतही नारद तीर॥

लख नारद हियमँह अकुलाये, मैं इकला, ये बहु मिल आये।
यदि अब ठहरों, पकड़ा जाऊं, सुभटन हाथ मार भी खाऊं ॥
यातें गमन उचित अब दीखे, ये हैं मूरख, ज्ञान न सीखे।
जो मैं अपना नाम उचारों, अज्ञ करन फल, देय चुकारों ॥

दोहा-विकट समस्या लख विवश, नारद नभतें जाय।
पै चितमँह इच्छा नहीं, सियतें तृप्ति न पाय ॥
छविमँह अति आसक्त ह्वै, गमन करन ना चाह।
तबहि हटों या थान से, चितभर निरखों ताह ॥

जबरन गवना यातें कोपा, विपका बीज हिये मँह रोपा।
भृकुटि चढ़ी नयनन अरुणाई, ओंठ डसे अति भुज फड़काई ॥
मनो प्रलय ही सजके आया, अब ना कोऊ बचै बचाया।
हुइ यों गति मति नारद जैसे, सोचै बदला लेवूं कैसे ॥

दोहा-गया हुता छवि निरखनहिं, वानें यों गति कीन।
बच न सकै तड़फावँ, जिम, जल बिन तड़फै मीन ॥
जबतक याविध ना करों, तबतक गहों न चैन।
चाही सो पूर्ती करों, नतो पुन दिनरैन ॥

सिसका वार सिया पै आया, अति दुख दैन कुभाव समाया।
सोय अवज्ञो सुभट बुलाके, गवनी, कम्पत रुदन मँचाके ॥
मैं तो तसु छवि निरखन आयो, तानें यों उत्पात मँचायो।
किसमिसाय पुन, पुन हू सोचै, कर उठाय पुन भूमँह मोचै ॥

दोहा—जग की महा विडम्बना, सिय भागी, भय खाय।
ता पांछे नारद लगे, छविसे तृप्ति न पाय॥
विषम परस्पर की दशा, कैसे सम वह होय।
कबै होय मम पूरती, मन चाहै, सब कोय॥

सबजग अपनी अपुन चितारै, पर का हेतू नांहि विचारै।
एक पक्ष एकान्त विहारी, ताफल झगड़े दुनियां सारी॥
है निज निज परिणामन स्वामी, पर का, पर रह सदा अकामी।
बलात पर को दोष लगावै, करै दोष तसु सूझ न आवै॥

दोहा—सोचै नारद दुख यतन, सिय विह्वल होजाय।
देख दुखी, मैं विहँसहों, तबहिं हियो सुख पाय॥
रचों चित्रपट अति रुचिर, गेरों, ढिगै कुमार।
लखै, होय विह्वल वहू, लगै कांम का वार॥

नारद चित, दुख उपाय सूझा, यासम और न होवै दूजा।
रचा चित्रपट रुचिर बनाया, मानहुँ सीतहिं लाय बिठाया॥
अंग उपंग फड़कते सोहैं, सोचै योलख सबही मोहैं।
रथनूपुर के बनमँह आया, केलि करत भामंडल पाया॥

दोहा—खगप चन्द्रगति तनुज यह, भामंडल किय केल।
आय बागमँह सखन सँग, रुचिर सघन तरु वेल॥
योंलख नारद यतनसें, नभतें पट खिसकाय।
गिरा साम्हनें लख तुरत, लीन्हा कुँवर उठाय॥

ज्योंही याका रूप निहारा, नेत्र अचल ह्वै, गत टिमकारा।
मुख छवि रुचिर मृदू मुस्क्याये; वीणा पाणि, मधुर स्वर गाये॥
अंग उपंग फड़कते देखा, याविन चैन न हियमँह लेखा।
ह्वै विह्वल सुधवुध विसराके, गिरा अवनि पै मूर्छा खाके॥

दोहा-भामंडल व्याकुल विपुल, नेक न धीर धराय।
काम शरहिं वेधा गया, गिरा मूरछा खाय॥
लख नारद हर्षित हुवा, चाह हुती सो होय।
अव पट रहस वतायवे, प्रगटो चहिये मोय॥

चिन्तत नारद, सन्मुख आया, सवमिल सादर शीस झुकाया।
भामंडल को सचेत कीन्हा, याह धोक ऋषी को दीन्हा॥
पुन भामंडल सविनय वोलो, भेद चित्रपट मोकूं खोलो।
जियत मृतक या सहज वनाई, परम सुन्दरी किसगृह जाई॥

दोहा-गुप्त न कछु है आपसे, अन्तरयामी देव।
द्रुत वताव हम सवन से, हिय श्रद्धांजलि लेव॥
सुन नारद इमि कुँवर वच, मनही मन विहँसाय।
मन चाहो मेरो भयो, सीय स्वाद अव पाय॥

सिंह स्याल रह, दुहु वन मांही, वैर विसाह, स्याल सुख नांही।
रि वैरी, को देय शरण्या, है को ऐसो मांहि अरण्या॥
वैर नाहकहिं सिया विसाहा, अव दुख भोगे मेरा चाहा।
याविध चिन्तत वयन उचारा, सुनहु कुँवर, हूं जाननहारा॥

दोहा–मिथुलापुरी सुहावनी, पुरिन, मांहि शिरमौर।
धन धान्यादिक युक्त वह, दिखै न दूजी ठौर॥
जनकराय बलधर गुणी, तास विदेहा रानि।
विपुल कला मन्डित निपुण, सकल गुणन की खानि॥

सिया नाम, तसु सुता दुलारी, मुख छवि नयनन की बलिहारी।
अंग उपंग सकल रुचियारे, रचिय विधाता योग्य तिहारे॥
तसु अनुरूप चित्रपट सोहै, इहिं लख काको मन ना मोहै।
मांहि चित्रपट कहा दिखावें, जाविध मुखछवि वामें पावें॥

दोहा–तुम विद्याधर बलधनी, गुण वैभव सम्पन्न।
तुझे छांड़, सोहै किसे, घंटा गज सोहन्न॥
रचिय विधाता अति रुचिर, तोकों दई दिखाय।
जानों, सो जैसी करो, योग्य तिहारे आय॥

सहजहिं काम अग्नि प्रज्वलाई, नारद वयन अतिहि धँधकाई।
मनो दमार विपनमँह लागी, याविध हियमँह भभकी आगी॥
हिय भामंडल बढ़ि विकलाई, सारी सुधबुध कुँवर गमाई।
नारद, विह्वल याह लखाके, कीन्हा गमन अतिहि सुख पाके॥

दोहा–कुँवरहिं जहर पिवाय पुन, नारद गमन सुकीन।
विष उतरै अब कौन विध, जलबिन तड़फै मीन॥
भोजन पान सुहाय नहिं, लेवै उष्ण उसास।
गायन वादन सब गये, एक चित्रपट पास॥

लोक लाज, कुल आन गमाई, बैठत उठत बढ़त विकलाई।
चित्रपटहिं चणचणहिं निहारै, हाय प्रिये, हा प्रिये उचारै॥
मत्त समान क्रिया गह लीन्हें, सुध बुध तन की बिसरा दीन्हें।
आय कोय तो नांहि लखावे, सियपट निरख, निरख कर ध्यावे॥

दोहा—सुन सुत की विह्वल दशा, मात पिता दुख लीन।
दिय नारद ने चित्रपट, सुत की इमि गति कीन॥
चिन्त्यत नृपने, निज प्रिया, सुत के ढिंग पठाय।
बहुविध यह प्रयत्न किय, हारी सुत समझाय॥

विविध भांति समझाकर हारी, पियसे ताविध जाय उचारी।
हठ गह गाढ़ी, सुत ना मानें, जाविध गही वही हठ टानें॥
सुतहठ, नाथ वेग अब पूरो, विपति पहाड़ वज्र से चूरो।
होनहार ना मिटै ' मिटाई, भूमिज कन्या ताहि सुहाई॥

दोहा—तुम सबविध समरथ प्रभो, सबहिं तिहारे हाथ।
ढील न कीजे यत्नमँह, इमि कह नायो माथ॥
श्रवत खगप ह्वै आकुलित, काविध करें उपाय।
सुततड़फत दिन रैन जिम, मीन नीर ना पाय॥

भूमिज नृप को, कँह हम यैसो, ना स्वीकारै करहें कैसो।
खग कुल मांहि अनादर पाहों, आन मान मर्याद गमाहों॥
दूजे, सुत ना धीरज धारै, वंशज रीती नांहि विचारै।
कूप खाइ सम गति में लीन्ही, पुन कछु सोच युक्ति इक कीन्ही॥

दोहा—सेवक निकट बुलाय द्रुत, कर्ण मांहि समझाय ।
श्रवणत वह प्रमुदित हुआ, वेग जनकपुर आय ॥
अश्वभेष रुचियुत धरत, नगर निकट किय वास ।
पुरजन याको निरख कर, की विन्ती नृप पास ॥

नगरी निकट अश्व इक आया, सुलक्षण, पुष्ट दिखै तसु काया ।
जनकराय सुन, द्रुत तँह आके, पुरुषारथ कर पकड़ा ताके ॥
ताढिग सेवक सुघर रखाया, समझा महत पुण्यतें पाया ।
एक मास अति सुखसें बीतो, आया पुन इकगज अनचीतो ॥

दोहा—लख पुरजन पुन नृपति ढ़िग, कहा वृत्त गज आय ।
पुण्य उदय तें, हे प्रभो, सहज विभूती पाय ॥
है मतंग सुन्दर सुदृढ़, सरवर के तट डोल ।
इमि पुरजन आकर सबहिं, बोले अमृत बोल ॥

सुन नृप प्रमुदत गज ढ़िग चाले, संगै सवही आय उताले ।
गजहिं मनोहर सरतट देखा, महत पुण्य तब अपना लेखा ॥
गजहित, पूरब अश्व मँगाया, तापै बैठ वेग नृप धाया ।
लखें अश्व निज, बारम्बारा, पुन वा गज की ओर निहारा ॥

दोहा—उड़ा गगन मँह अश्व द्रुत, रोका रुकता नांहि ।
परिजन पुरजन सकल जन, अति शोकें हिय मांहि ॥
पुन गजहू ना लख पड़ा, कँहपै गया विलाय ।
याविध लख नृपका हरण, हाहाकार मँचाय ॥

कोऊ रहस समझ ना पाया, काहे अश्व पूर्व इत आया।
ह्वै विलीन गज, रूप दिखाके, लेय गया हय, नृपहि बिठाके॥
गगन मांहि क्यों लैके धाया, अपना चमत्कार बतलाया।
सोच सोच सब पुन रह जावें, वास्तव मर्म समझ ना पावें॥

दोहा–आय अश्व रथनूपुरहिं, वनमँह तरुतल जाय।
तरु शाखा दृढ़ गहि जनक, प्रमुदत महिपै आय॥
तहां जिनालय लख नृपति, सहसथंभ युत सज्ज।
हयकामह उपकार जनु, श्रीजिन भवन लखज्ज॥

भूल गया नृप, द्रुत दुख सारा, यों लख भवन, जनक सुख धारा।
सुदृढ़ भवन सुन्दर निरमाया, सुना न देखा ज्यों हम पाया॥
निशंक प्रविशा मन्दिर मांही, हर्ष समाय हिये मँह नांही।
महा मनोहर बिम्ब विराजें, प्रातिहार्ययुत अतिशय छाजें॥

दोहा–शान्ति अनूपम छवि निरख, हर्षित हुआ अपार।
दर्शै पुन, पुन थुति करै, नतैं हिय सुखधार॥
सूर्य चन्द्र या रत्नद्युति, मूरत सम ना कोय।
जैसी प्रभु छवि अति दिपत, काविध वर्णन होय॥

छत्र सहित सिंहासन सोहै, मूरत पद्मासन मन मोहै।
नंदीश्वरमँह जिमि सुर पूजें, तासम ही, या थलमँह हूजें॥
हुआ मगन नृप मूर्छा खाई, सुधबुध तनकी सब बिसराई।
गई मूरछा हिय हरषाके, दर्शत पूजत भाव लगाके॥

दोहा—स्वामि ढ़िगै खग आय द्रुत, आगम जनक बताय।
मन्दिर ढ़िग तसु मेल्हकर, किय सूचित, हे राय॥
चन्द्रगती यों श्रवतही, प्रमुदित हुआ अपार।
युक्ति अपूरव हम करी, सुतदुख नाशनहार॥

चिन्त्य, प्रथम तिहिं प्रेम दिखाहों, पुन सुतकी अति चाह सुनाहों।
रनावँ वासे जैसे तैसे, वह मानेगा तब ना कैसे॥
यों चिन्त्यत ही नृप विहँसाया, विधुवारिधि सम हर्ष लहाया।
होनहार गति नांहि विचारी, वा ना कबहुँ टरत है टारी॥

दोहा—होनहार बलवन्त है, यदी निकांचित होय।
दशविध बंध विचार पुन, नित पुरुषारथ जोय॥
अन्य बंध विघटत मिलत, जियको या जग मांहि।
मोक्ष न जावत, जब तलक, साता पावै नांहि॥

खगपति द्रुत दलपतिहिं बुलाके, चला ठाठ युत साज सजाके।
सिंह वाहनादिक सज असवारी, देखा जनक विकलता धारी॥
नांहि खगन को अब तक देखा, यातें चितमँह अति भय लेखा।
तब प्रभुपदतल निजहिं छिपाया, चिन्तै, कोये कँहसे आया॥

दोहा—जनक विचारै मनहिं मन, पूर्व सुनें खग होत।
वेही मालुम पड़त हैं, आये करत उदोत॥
बहु आडम्बर कर सहित, नाना वाहन बैठ।
यों चिन्त्यत ही भय सहित, प्रभु पद नीचै पैस॥

आय चन्द्रगति मन्दिर मांही, हियमँह हर्ष समावै नांही।
श्रीजिन दर्शे, कीन्ही पूजा, यासम पुण्य और ना दूजा॥
किय थुति, जग जीवन हितकारी, तारो, अब है वार हमारी।
काल अनादि वृथा ही खोये, हिरदय मांहि तुम्हें ना जोये॥

दोहा—होय मगन अति थुति करी, चन्द्रगती खगराय।
बीन बजाई मुदित ह्वै, वरणन कह्यो न जाय॥
अवत जनक प्रमुदित हुआ, येहू भक्त दिखाय।
यातैं भय करवो वृथा, चिन्त्या, सन्मुख आय॥

लोचन मिले परस्पर मांही, विहँसत निरखें शंकैं नांहीं।
मुदित होय खगपती उचारा, कहहु भव्य कँह थान तिहारा॥
हो तुम भूमिज या खगराई, यहां आय का आश लगाई।
अवत जनक याविधै उचारी, हूं भूमिज, मिथुला अधिकारी॥

दोहा—जनक हमारा नाम जनु, मायामइ हय लाय।
तरुशाखा से झूम हम, वह द्रुत गया विलाय॥
सन्मुख देखा जिन भवन, दर्शे श्री जिनराज।
भाग्य हमारा, दर्शतें, सफल भयो है आज॥

सुन खगपति हू मुख विहँसाकैं, बोले इनसें प्रेम जनाकैं।
अहा, हमहुँने दर्शन पाये, जनकराय ममगृहमँह आये॥
है तुअ सुता रूप गुण खानी, वह मम सुत मन मांहि समानी।
हम तुम, उन संबंध रचावें, भूमिज खगपहु आनँद पावें॥

दोहा–अव्रत खगप के यों वयन, कहा जनक विहँसाय।
मैं दशरथ सुत राम को, परिणावन ठहराय॥
यातें यो ना हो सकै, चह रवि शशि टर जाय।
जनक वयन ना टर सकै, कोटक करो उपाय॥

अवत चन्द्रगति रुषित उचारा, का महत्त्व लख दैन विचारा।
कौन कला वामें लख पाई, जासें ऐसी "आन" धराई॥
अव्रत जनक याविधै उचारी, अवो जास विध दैन विचारी।
आपहु अव्रत चकित हो जावें, "आन" हमारी ठीक बतावें॥

दोहा–मिथुलापुरी सुहावनी, धनधान्यादिक पूर।
धर्म कर्म रत सुघरजन, सबै सुःख भरपूर॥
एकसमय कोउ म्लेच्छ नृप, टीड़ी दलयुत आय।
गय हय जन सब नष्ट किय, चहूंओर दल छाय॥

धर्म कर्म सब मेंटनहारे, महा विरूप निशाचर सारे।
उनसम अधमा आन न होई, यों लख सुध बुध सब हम खोई॥
लिख्यो वृत्त, है मित्र हमारो, विपद्ग्रस्त हूं मुझे उबारो।
दशरथ अतुलबली अवधेशा, तानें भेजे सुतहिं बलेशा॥

दोहा–प्रजहिं रक्ष विक्रम सहित, अरु रक्षो सब देश।
यदि रक्षा न करत वे, कछुहु न बचता लेश॥
धैर्य, शौर्य, साहस प्रबल, उन तन रहे समाय।
तैसे कहूं न देखियत, उनसम वेही आय॥

टीड़ी सम निशिचरहिं भगाये, राम लखण दोउ भ्रात कहाये।
कीन्ह अपरिमित मम उपकारा, सुतादेन यायिधि विचारा ॥
कहँतक राघव का यश गाऊं, काविध ऋण वारिधि तर जाऊं।
सुतादेन में फेर न जानो, "आन" हमारी सांची मानो ॥

दोहा–विरुध वयन यों सुन खगप, मनमँह अति रिसयाय।
नयन अरुण ह्वै, कह वयन, सुन मिथुला के राय ॥
तुअ वच सुन हांसी उठै, होतुम मतिके हीन।
काह प्रशंसे अति अधिक, कहा पराक्रम कीन ॥

म्लेच्छ जीते, कायश गाया, उल्टा मान निरादर पाया।
माखी मार वीर कहलाये, तुमहू त्यों विरदावलि गाये ॥
भूमिज रंक, दीन सम जानो, वृथा तिन्हों का विरद बखानो।
मालुम पड़त, गई मति मारी, यातें तुम यों "आन" उचारी ॥

दोहा–विपफल जिहिं अमृत जचे, उसे, उसी से हेत।
वायस चाखै निम्बफल, अमृतफल तज देत ॥
विश्वविदित खगकुल तजत, तुम सम मूढ़ न आन।
सुधा सलिल तज मूढ़ नर, कियो चहे विप पान ॥

श्रवत जनक हू अति रिस लीन्हा, रंक दीन भूमिज कह दीन्हा।
किसमिसाय कह, सुनहु हमारा, क्यों तुम भूमिज रंक उचारा ॥
नित उपजत, तीर्थंकर जामें, अरु चक्री, हर हलधर तामें।
वाकुल की तुम निन्दा ठानी, तुमसम मूढ़, न कोउ अज्ञानी ॥

दोहा-सरित, वापि, सर, कूप जल, सबका प्यास बुझाय।
प्यास बुझत ना सिन्धुमँह, तासम तुमहु कहाय॥
मत्त मतंगज संघ को, हन केहरि का बाल।
लघु दीपक निशि तिमिर हर, लघु चक्री जगपाल॥

सरित, शैल से जन्म लहावै, कबहुँ सिन्धु ना सरित बहावै।
तुम भूमिज को लघू लखाये, खग, वायस इकराशि कहाये॥
भूमिज का बल, खग क्या जानें, जिमहिं घूक ना भानु पिछानें।
याविध जनक रोषयुत बोला, मानो गिरा तोप का गोला॥

दोहा-श्रवत खगप अरु सकल खग, सब सन्नाटा खाय।
चिन्तें जाविध कहत यह, वह तो असत न आय॥
काज सरै ना याविधै, हमहु उच्च, ये दीन।
भूमिज, खग के कुलन मँह, कौन महत को हीन॥

सब खग मिलकें मंत्र विचारो, गर्जि जनक से इमहिं उचारो
तुम भूमिज का बहुयश गाया, पै हमार मन नेक न भाया॥
अब निष्कर्ष तुम्हें बतलावें, सुर सेवित द्वय धनुष पठावें।
वज्रावर्त प्रथम यह आये, दूजा सगरावर्त कहाये॥

दोहा-युगल धनुष राघव लखण, बलयुत दोऊ चढ़ायँ।
व्याह देव अपनी सुता, नहिं बलात ले आयँ॥
करत अस्वीकृत ना बनें, चलै न जोर बसाय।
पिञ्जरस्थ पञ्चाननहिं, होत स्वान दुखदाय॥

विवश जनक स्वीकारहिं कीन्हा, पिन्ड खगों से छुड़ाय लीन्हा ।
सज समाज द्रुत चले खगेशा, युगल धनुपयुत जनक नरेशा ॥
धनुप चढ़ाय सके खग नांही, यातें 'आन' धरी या मांही ।
याविध मनमँह जनक विचारा, आये मिथुला नगर मँझारा ॥

दोहा-परिजन पुरजन सबहिन लख, लीन्हा हर्प अपार ।
गायन वादन नृत्य हुअ, भये मंगलाचार ॥
पै नृप जनक मलीन मुख, मँचाय हियमँह द्वन्द ।
धनुप चढ़ावन कठिन अव, कटै कौन विध फन्द ॥

नृप हिय छाई व्याकुलताई, जाविध नीर मीन ना पाई ।
पिय सशोक लख अतिअकुलानी, कही विदेहा मंजुल वानी ॥
पुन पुन पिय क्यों लेहु उसासा, कौन सुन्दरी तुअ मन फांसा ।
जा तिय पै पिय आप रिझाये, वाको क्यों ना आप सुहाये ॥

दोहा-सुमन सेज पौढ़े यदपि, तदपि लहत तुम क्लेश ।
कौन रहस या मँह छिपो, मिलै सुःख ना लेश ॥
हूं मैं तुव अर्धाङ्गनी, मोसैं मती छिपाव ।
होय सुःख जाविध तुम्हें, ताविध मुझे बताव ॥

श्रवत जनक, तियकी मृदुवानी, मुझे दुखी लख, अतिअकुलानी ।
रहस श्रवन हियमँह अकुलावे, बिना बताय रहा ना जावै ॥
याविध चिन्त्य उचारा याको, अवहु प्रिये, मैं बतावँ ताको ।
जासे हियमँह चैन न आवे, सुमन सेज तउ दुःख सतावै ॥

दोहा—ना रीझा पर युवति से, ना तन, व्यथा सताय।
मांपै घटना जो घटी, दुःखहेतु वा आय॥
आय अश्व मायामई, उड़ा गगन मँह लेय।
रथनूपुर ढिग पहुँचकर, विपन मांहि धर देय॥

खगप चंद्रगति तँह का स्वामी, ताका सुत भामण्डल नामी।
मोसें मिल अति प्रेम जनाया, पुन निज मन की आश सुनाया॥
सुता तिहारी ममसुत चाहै, दे स्वीकृत, हम ताह विवाहै।
मैंने अपनी "आन" बताई, दशरथ तनुज दैन ठहराई॥

दोहा—सबमिल पूंछी काह तें? मैं सब वर्णन कीन्ह।
राम लखण विपदा हरी, तबहिं शपथ हम लीन्ह॥
धैर्य, शौर्य, साहस प्रबल, उन तन रहे समाय।
उनसम आन न देखियत, उनसम वेही आय॥

यों वर्णन विस्तृत बतलाया, पै उन चितमँह नेक न भाया।
हमसे अतिहि विवाद मँचाकें, "आन" धरी उन हमें जताकें॥
सुर सेवित द्वय धनुष पठावें, राम लखण दोउ भ्रात चढ़ावें।
चढ़ाय देवें सुता विवाहो, ना चढ़ायँ तो, ना हो चाहो॥

दोहा—या निश्चय स्वीकृत करो, नहिं, बलात ले आयँ।
यामँह फेर न जानियो, यह निष्कर्ष जतायँ॥
यों कह, निज सुभटन सहित, दीन्हें धनुष पठाय।
आये वेहू संगमँह, ठहरे पुर नियराय॥

बताव काविध सुता बचावें, याका हियमँह दुःख सतावै ।
धनुष महान अग्नि बरसावें, सुर सेवित, को तिन्हें चढ़ावें ॥
तिन्हें चढ़ाय सकै हरि नांही, को समरथ चढ़ाय जग मांही ।
यदी फणाच ना राम चढ़ाई, तबतो सिय ना बचै बचाई ॥

दोहा-यादुख से दुक्खित रहूं, दुःख कौन विघ जाय ।
सोच सोच रह जात हों, सूझै नांहि उपाय ॥
करार कीन्हा तीस दिन, गये बीत दिन बीस ।
बलात सिय को वे हरें, मानो बिस्वावीस ॥

अवत विदेहा अति अकुलाई, हाय सिया कह मूर्छा खाई ।
नृपति सचेती, हिलकी आई, विलपत अतिहि पुकार मँचाई ॥
हाय दैव दुठ, दया न तोकें, जन्मत मेरो पुत्र हर्यो तें ।
जसतस पुन ये पुत्री पाली, येहू तोकों हियमँह साली ॥

दोहा-सुन विलाप उपलहु द्रवै, कहा मनुज की बात ।
समझावें तउ धैर्य नहिं, मनो बज्र आघात ॥
जसतस धीर धराय नृप, आय धनुष के थान ।
आया एक विचार तँह, सविधि स्वयम्वर ठान ॥

मंडप मञ्च सुवेश सजाकें, सब नृपतिन प्रति पत्र पठाकें ।
नृपति दशरथहि न्योंत बुलाये, सुतन सहित नृप सजकें आये ॥
राघव लक्ष्मण दोऊ बीरा, भरत शत्रुहन सोहें नीरा ।
आए स्वयंवर मन्डप बीचा, सब नृप, तिनसुत बैठ समीपा ॥

दोहा—रूप शील शुभगुण सदन, सियछवि जनमनहार।
सखिनि बीच शचिसम दिपै, अइ रँगभूमि मँझार ॥
संग एक खोजा निपुण, करन नृपन गुण गान।
कनकयष्टि करमँह धरें, सबका विरद बखान ॥

प्रथमहिं सबकी कीरत गाई, पुन विवाह की शर्त सुनाई।
जो नृप वज्रावर्त चढ़ावै, सो जयमाल सहित सिय पावै ॥
हरखहिं नृप, सुत सुन यों वानी, गवने धनुष ढिगहिं अभिमानी।
धनुर्वेदमँह निपुण कहाये, हमें छांड़ को, धनुष चढ़ाये ॥

दोहा—धनुष ढिगै आये जबै, देखें दृष्टि पसार।
भगे तुरत निज प्राण लै, सुनत नाग फुन्कार ॥
प्रबल ज्वाल की झार सें, गिरे मही पर जाय।
अग्नि फुलिन्गन तेज लखि, वीर न कोउ समुहाय ॥

कोई निरख दूर तें भागे, धर न सके इक पग भी आगे।
और कोय यों मनहिं विचारा, यम न लेय तो धनुष सँहारा ॥
रचा स्वयम्बर प्रान नशावन, दिखते अशकुन महा भयावन।
यदि हम जियत लौट घर जावें, लिय नव जन्म, दान बटवावें ॥

दोहा—याविध सब नृप अरु कुँवर, बैठ रहे भयखाय।
तबहिं राम प्रमुदित हृदय, पहुँचे धनु ढिग जाय ॥
राम तेजतें धनुष के, व्याल ज्वाल तज दीन।
शिष्ट शिष्य सम ह्वै धनुष, विनय राम की कीन ॥

चांप राम धनु चांप चढ़ाया, महि नभ भीम घोर रव छाया।
तबही पर्वत थरथर कम्पे, सकल महीभी अतिही जम्पे॥
कर्णन मांहि बधिरता छाई, धन्य राम, यों गूंज समाई।
नभतें सुमन वृष्टि सुर कीन्हें, दे आशिष, सबहिन सुख लीन्हें॥

दोहा–सकुच सीय खंजन नयन, मुदित राम ढिग आय।
सब भूपन के सन्मुखे, मेल्ह माल गलमाय॥
शशि ढिग सोहै रोहिणी, तिम सिय ढिग श्रीराम।
मनो दया अरु धर्म दोउ, आके किय विश्राम॥

लच्मण दूजा धनुष चढ़ाया, दशदिश भीम घोर रव छाया।
कड़च निनाद श्रवत भय लीन्हें, सादर सुमन अञ्जुली दीन्हें॥
सुयश दशोंदिशमँह अलि छाये, लज्जित खगगण शीस झुकाये।
कहि, सतवच कह जनक नरेशा, राम लखण बलवीर महेशा॥

दोहा–कनकसुता हू मेल्ह द्रुत, लखण गले वरमाल।
अष्टादश कन्या खगन, वरमाला तिहि डाल॥
सद्गुण पुजता जगतमँह, रिपुहु करैं गुणगान।
गवने खगगण मन मलिन, मानहान निज जान॥

धरउत्साह इतै खग आये, समझें धनु, को वीर चढ़ाये।
जगमँह इक से इक बलवन्ता, होय न जबतक वीर्य अनन्ता॥
मानभंग से अति सकुचायें, जाकर प्रभु को वृत्त सुनाये।
खाई हार सबै चुप बैठे, पूर्व जनक से जो थे ऐंठे॥

दोहा–लखा भरत, विक्रम प्रबल, राम लखण, यश छाय।
इनसम बल मोमें नहीं, तात एक ही पाय ॥
यातें धिक जगकी दशा, तजूं जगत जंजाल।
केकइ लख सुत मुखमलिन, कह दशरथसें हाल ॥

अहो, भरत की ओर निहारो, वह तपधारन, भाव विचारो।
पुनः स्वयंवर विधि रचवावो, माला भरत गले गिरवावो ॥
कनकसुता इक अभी कुँवारी, यों केकइ, दशरथहिं उचारी।
सुन दशरथ संदेश पठाया, तबहिं स्वयंवर कनक रचाया ॥

दोहा–लौटाये सब नृपहिं, सुत, जनक कनक दोउ धीर।
बैठे नृप, सुतसाज सज, मंडपमँह, सब वीर ॥
दशरथ भी सब सुतन युत, बैठे सभा मँझार।
कनकसुता वरमाल लै, भरत गलेमँह डार ॥

लखा भरत हू ज्योंही याको, भूला, विहँसत विरागता को।
जनक कनक, अति स्वागत कीन्हें, परिजन पुरजन अति सुख लीन्हें ॥
धन्य-धन्य दशरथ जगमांही, यासम पुण्यी जगमँह नांही।
सब सुख वैभव याने पाया, तिय, सुत, धन कन कंचन माया ॥

दोहा–राम लखण दोउ भ्रात का, दिन दिन बढ़ा प्रताप।
ग्रीष्म सूर्य ज्यों-ज्यों बढ़े, त्यों हो खर आताप ॥
अतिशय पुण्य प्रकाशतें, जगसुख वृद्धी पाय।
"नायक" आतम प्रकाशमँह, सुख चिद्रूप लहाय।

इति नवमः परिच्छेदः समाप्तः

अथ दशरथ नृपति के चित्तमँह वैराग्य उत्पन्न होने का वर्णन।

वीरछन्द—

लख अष्टान्हिक पर्व अनूपम, नृपदशरथ हिय बढ़ा हुलास।
धर्ममांहि रत रहै निरन्तर, कीन्ह अन्त तक अठ उपवास॥
पुनहुलसत जिन मन्दिर मांहीं, रत्नचूर्ण मन्डल मढ़वाय।
शची इन्द्र सम साज सजाकैं, सब रानिन मह पूज रचाय॥

दोहा—अन्तिम पुन अभिषेक किय, श्रीजिन जन्म सुचिन्त्य।
हरिसम पुण्य कमाय नृप, कीन्हो भक्ति अचिन्त्य॥
चिन्तै जिन साक्षातसम, मैंहूं इन्द्र समान।
क्षीरोदधिसे इस्नपन, है सुमेर यह थान॥

यों बहु भक्ति नृपति दर्शाया, पुन गन्धोदक गृहै पठाया।
त्रय रानिन ढ़िग, सखियें लाईं, भक्ति भाव युत नयन लगाईं॥
खोजाकर, सुप्रभहिं पठाया, वह ना लेय अभी तक आया।
हृदय मांहि सुप्रभा रिसानी, मरण करनहित चितमँह ठानी॥

दोहा—नृपति घना अपमान किय, गन्धोदकहिं न पठाय।
भन्डारी बुलवाय, तसु, "विष ला" हुकम लगाय॥
कोप जीतनो कठिन लख, लखै सहज, तज प्रान।
जो जीतै या कोप को, होवै सुखी महान॥

औषधि हेत मँगाया जानें, यातें शंका कीन्ह न यानें।
नृप जिनभवन निकसकें आये, अय रानी गृह मांहि लखाये ॥
रानि सुप्रभा नांहि लखाई, खोजी कोप भवनमँह पाई।
विहँसत नरपति याह उचारी, कहो कौन पै कोप्यो भारी ॥

दोहा–ताहि समय रानी ढ़िगै, भन्डारी विष लाय।
विनवत भन्डारी कहै, लेव जहर, लै आय ॥
श्रवत नृपति विस्मित भयो, भन्डारी से लेय।
पुन रानी से कह नृपति, काह प्रान तूं देय ॥

ताहि समय पै खोजा आके, बोला कपत वदन शिरनाके।
श्रीजिनका गन्धोदक लीजे, नयना सफल लगाकें कीजे ॥
देय मुझे नरनाथ पठाया, याविध कह, निज मस्तक नाया।
लखा नृपति समझे मन मांही, याह मिला गन्धोदक नांही ॥

दोहा–रोषयुक्त बोले नृपति, क्यों तूं देर लगाय।
भय ना तोकों नृपति का, जास चाकरी खाय ॥
मोकों मालुम पड़त है, चाला मग इतरात।
शठ तेरी करतूति तें, ह्वै मरणहिं उत्पात ॥

नृपवचसुन खोजा अकुलाके, बोला, लोचन अश्रु वहाके।
अंग अंग कांपै थे याके, मनो हकारा यमने आके ॥
हे नरनाथ, विनय सुन मोरी, पांछे दीजो मोकों खोरी।
नांहि शरीर साथ अब देवै, काके बलका शरणा लेवै ॥

दोहा-कर विवेक देखहु प्रभो, हूं ना भाजन कोप।
रुपित होय पुन आपहू, वृथा दोष आरोप॥
तन बलिष्ट पहिले हुता, राजहंस सम चाल।
मोपै चल्यो न जात अब, शिर मड़रावै काल॥

शक्ति क्षीण, वृद्धापण धारो, धरत चरण तउ कपत हमारो।
वक्र पीठ हुइ मनो कमानी, फडच्च चढ़ाय कमानी तानी॥
धवल केश मनु अस्थि पहारा, तेज रहित हूँ गात हमारा।
दंतहीन मुख छवी गमाई, मनो चित्र पै वरसा आई॥

दोहा-आई वेला चलन की, किधों सांझ कै भोर।
काल जलद गर्जन श्रवत, कांपत है हिय मोर॥
मृत्यु न भय, जिमि नृपति का, गिरत फिरत भैरात।
इतने पै भी कहत हो, चालत मग इतरात॥

आप न कर, यदि रक्षा मोरी, को कर, तन की जर रहि होरी।
बताव, काके शरणा जावूं, भूल होय तो चूक मनावूं॥
स्वामिभक्त तत्परता मेरी, मोकों विवश लगी है देरी।
वृद्धापण दिन बदिनरु पावूं, शीघ्र काल के गाल समावूं॥

दोहा-कह खोजा, मनु देशना, नृप सुन उपज विवेक।
सांची ही, खोजा कहत, असत नांहि है एक॥
फूला मैं रजमद विषैं, लखत न अपनी भूल।
वृद्धा प्रति कहकर कुवच, लख स्वरूप प्रतिकूल॥

होगी दशा एक दिन मेरी, नाहक भूला अब ना देरी।
बुदबुद जलवत विनशै देहा, क्षणभंगुर धन यौवन गेहा ॥
दामिनवत जग ठाठ दिखावै, विलय होनमँह देर न आवै।
काल अनादि वृथा ही खोया, निज स्वरूप कबहूं न टटोया ॥

दोहा—विषय भोग विषधर विरस, डसत हरत प्रिय प्रान।
सुखाभास सम दुखद रस, इन्द्रायन फल जान ॥
वे ही धन, आतम तपें, त्यागें विषय कषाय।
रत्नत्रय सुरतरु सदृश, आराधत शिव पाय ॥

दशरथ, द्वादश भावन भाये, विषय कषाय विरक्ती छाये।
चिन्तें, शुभतें जगसुख पाया, जिमि तरुवर की विघटन छाया ॥
निश्चय स्वात्म कबहुँ ना पाये, व्यवहारहिं व्यवहार रमाये।
अब तप तपकें कर्म नशावूं, सांचा शिवपद अपना पावूं ॥

दोहा—उदासीन यद्यपि रहूं, योंभी नांहि वितांव।
परम्परा मुनि रीति गह, अविनाशी पद पांव ॥
यदि मुनिपद धरहों नहीं, होय महा विपरीत।
सुत पुन किम मुनिपद गहें, परम्परा की रीत ॥

उपादान ने जोर लगाया, उपज विवेक हिये मँह आया।
पदार्थ जगमँह जितनइ जेते, उपजें विनशें कितनइ केते ॥
स्वपद चतुष्टय निजके मांही, अन्य चतुष्टय बदलै नांही।
स्वयं आपका कर्त्ता हर्त्ता, स्वयं आपही फलका भर्त्ता ॥

दोहा—सर्वभूपती नाम गुरु, आचारज कहलांय ।
मनपर्यय ज्ञानी गुरू, सरयूतट पै आंय ॥
धर्म—मूर्ति चउसंघ युत, आये विपन मँझार ।
क्षमा धाम तप तेज दिप, कर्म विदारनहार ॥

संघ मुनिन का ध्यान लगाये, कइ कंदर, कइ सरतट धाये ।
कई विपन चैत्यालय मांही, तनमांही हू ममता नांही ॥
तपें उग्रतप आत्म विहारी, रविसम दीप्ति दिपै तिन भारी ।
शशि सम कांति विपनमँह छाई, कर्म तिमर विघटावन आई ॥

दोहा—अवलोके वनपाल जब, संघ सहित गुरु आय ।
जाय नृपति ढिग विनययुत, गुरु का वृत्त बताय ॥
हे नृप, अतिशय पुण्यतें, आय मुनिन का संघ ।
कीजे दर्शन जायकें, रविसम दीपै अंग ॥

श्रवणत दशरथ अति सुख लीन्हा, अतिहि द्रव्य वनपालहिं दीन्हा ।
मुनि दर्शनहित की तैयारी, चाले संग सभी नर—नारी ॥
बैठे गजपै दशरथ चाले, आय मुनिन के थान उताले ।
इन्द्रोदय उद्यान सुहाया, सरयूतट मुनि आश्रम पाया ॥

दोहा—वाहन तज नृप मुदित ह्वै, वेग मुनिन ढिग आय ।
दर्श पूज अति थुति करी, वन्दे मन वच काय ॥
स्वात्म सुखद रमते प्रभो, दुर्लभ दर्शन दीन ।
दर्पणवत निज रूप लख, पाप पुण्य कर क्षीन ॥

पाप पुण्य को हेय पिछाना, निश्चय स्वात्म स्वरूप लखाना।
बंध नांहि, रम स्वरूप मांही, बरसै मेह रहै दव नांही ॥
निधि रत्नत्रय में ना पाया, विरथा काल अनादि गमाया।
यातें धर्म स्वरूप बताओ, मुखशशि कर वचनामृत प्याओ ॥

दोहा-श्रवत गुरू, नृप प्रश्न किय, कहा धर्म सुखकार ।
हिये तोष, हितकर अमित, यों वच अमिय उचार ॥
सप्त तत्त्व षट द्रव्य अरु, नव पदार्थ बतलाय ।
भाव द्रव्य नो कर्म का, विशद स्वरूप बताय ॥

स्वपद स्वभाव, कुपद परभावा, चतु द्रव्यें नित लहें स्वभावा।
पुद्गल आत्म स्वभाव विभावी, उपादान निज शक्ति स्वभावी ॥
विभाव प्रगटै निमित्त पाकें, स्वभाव प्रगटै निमित हटाकें।
विभाव एक बार नश जावै, पुनजिय विभाव कबहुँ न पावै ॥

दोहा-शुद्ध स्वर्ण काई रहित, रहै नीर के संग ।
शुद्ध जीव भी कर्मगत, चढ़ै न पुन विधि रंग ॥
यातें रत्नत्रय भजहु, चढ़हु मोक्ष सोपान ।
सुख अविनाशी विलसतहु, लहहु अमित गुणखान ॥

धर्मामृतलह नृप हरपाये, मनो अजहु शिव मारग पाये ।
विकसा आनन वारिज याका, भव्य भृंग मड़राया ताका ॥
ज्ञान पराग सुगन्धी लीन्ही, आत्म स्वरूप रमणता कीन्ही ।
चिन्तै, कब मैं मुनिव्रत धारों, कर्म कालिमा शीघ्र विदारों ॥

दोहा—सम्यक श्रद्धा धार हिय, गुरु पद पंकज सेय ।
कीन्ह गमन यँहतें नृपति, मुनिपद इच्छा लेय ॥
सजग होय भववाससे, बारह भावन भाय ।
"नायक" रत्नत्रय भजै, पद अविनाशी पाय ॥

‡ इति दशमः परिच्छेदः समाप्तः ‡

अथ भामण्डल को जातिस्मरण की उत्पत्ति भामण्डल का सीता से मिलाप चन्द्रगति विद्याधर का दीक्षा ग्रहण वर्णन

—वीरछंद—

रात्रि दिवस भामण्डल व्याकुल, संग सखा हू अति अकुलाय ।
दिवस बरस सम बीतत जाये, कामदाह नित हिया जलाय ॥
गीत नृत्य कर याहि रिझावें, याचित कछू सुहावे नांहि ।
हाय प्रियाकह, चित्र लखै नित, चिन्तै, याही को हिय मांहि ॥

दोहा—मधुवच भाखत घृत दहन, मनु अग्नी प्रजलाय ।
यों सब उच्चरें मिष्ट वच, त्यों ही अति अकुलाय ॥

असन पान तज, वक करै, सगरी सुधबुध भूल।
जीवन तें मरिबो भलो, यों बुध भइ प्रतिकूल ॥

तात ढिगै जा सखा उचारी, अहो तात, सुत सुधहु बिसारी।
खानपान वाने तज दीन्हा, मत्त समान भेप कर लीन्हा ॥
मैं समझाय सकलविध हारा, एक वचन ना सुनें हमारा।
प्रान जान की बाजी आई, तऊ आपने सुध बिसराई ॥

दोहा-सखा वयन सुन चन्द्रगत, दीरघ लेय उसास।
कहा, सुनहु हे सुत सखे, छांड़ो वाकी आस ॥
घनायत्न मैं कर चुका, दीन्हा सुभट पठाय।
अश्व भेपधर तासने, नृप जनकहु ले आय ॥

नृपतिजनक से मिलाप कीन्हा, सुत की आशा बताय दीन्हा।
जनकराय के मन ना भाई, तानें दैन, राम ठहराई ॥
तब हम सब मिल मंत्र विचारा, धनु चढ़ांय निष्कर्ष निकारा।
सुरसेवित धनु तहां पठाये, राम लखण ने तुरत चढ़ाये ॥

दोहा-जाबलसें गर्जत हुते, ताबल राखी "आन"
धनुप चढ़ावै कौन जन, जगमँह बली महान ॥
सुरसेवित जबहैं धनुप, यों गर्वे मनमांहि।
चढ़ा सकै को नर धनुप, हरि जब समरथ नांहि ॥

होनहार बलवान कहाई, मेंट सके ना, नर सुर राई।
यातें सुतको धीर धरावो, खग कन्यन सह व्याह रचावो ॥

यों लाचारी बताय याको, येहू जाय जताय सखाको।
सुन भामण्डल कुपित उचारा, वनसे आ, मनु सिंह दहाडा॥

दोहा—धिक इन सबका खगपणा, भूमिज से भय खाय।
लांब स्वतः, मैं देखहों, सो सन्मुख को आय॥
जनकराय है चीज क्या? हरि से भय ना खांव।
हूं विद्या मंडित प्रबल, वाको लेके आंव॥

योंकह द्रुतसे प्रयान कीन्हा, दल बल संग सखा हू लीन्हा।
विदग्धपुर पै विमान आया, ज्योंही याने ताहि लखाया॥
जातिस्मरण हुआ तब याको, लखा पूर्वभव अपुनरु वाको।
तँहतें, गर्भ विदेहा आके, पाई वृद्धि रहा सुख पाके॥

दोहा—चितोत्सवा को मैं हरी, पूरव, गृह बुलाय।
तपधर, समयुत, मर वहू, गर्भ विदेहा आय॥
भाइ बहिन हम ऊपजे, मोकों सुर हर लीन।
पूरव वैर चितारके, अतिरिस हियमँह कीन॥

पूरव पुण्य आयु थी वाकी, रिपतज सुर, पुन मम रचा की।
वस्त्राभरण हमें पहिराया, कुन्डल काननमँह चमकाया॥
लघुपरणी को संग लगाके, गया असुर नभतें खिसकाके।
चन्द्रगती ने मोकों पाया, सुतवत पाला, भेद न लाया॥

दोहा—या भव की वा मम वहिन, पूरव कीन्ह कुभाव।
यातें इस ही भव विषैं, कर्म किये दुरभाव॥

धिक धिक कर्मन की दशा, बहु अनरथ कर दीन।
यों चिन्तत, लग वज्र सम, तत्क्षण मूर्छा लीन॥

सखा सखा द्रुत पांछे लाया, समझा विलपत मूर्छा खाया।
ज्योंही याने सचेत लीन्हा, त्योंही हाहाकारा कीन्हा॥
सबही मिलजुल पुनसमझाये, तनया पूरव भेद बताये।
या भय की था बहिन हमारी, बिना ज्ञात, दुरबुद्धी धारी॥

दोहा—हाल कहा विस्तार युत, ज्यों का त्यों बतलाय।
मैं अरु वा याभव विषें, गर्भ विदेहा आय॥
पूरव कुत्सित भाव वश, अशुभ बंध कर लीन।
याभव वानें दीन्ह रस, यों कुभाव कर दीन॥

चन्द्रगती सब सुनकर जानी, भाइ बहिन संबंध कहानी।
पूर्वबैरतें सुरहर लीन्हा, पुन रिस तजकें मोकें दीन्हा॥
उतै जन्म इत वृद्धी पाया, ह्वै भूमिज, खगपणा कहाया।
अति विचित्र रस कर्मन दीन्हा, जगमँह याका अन्त न लीन्हा॥

दोहा—अन्त करों अब कर्म अरि, यों चिन्त्या खगराय।
भामण्डल को राज दे, आप गुरू ढिग जाय॥
सर्वभूति आचार्य ढिग, इन्द्रोदय उद्यान।
आय नमत अति थुति करत, उपजा हर्ष महान॥

विनवत गुरु से इमहिं उचारा, कहो प्रभो, कर्त्तव्य हमारा।
सुनगुरु बोले अमृत बानी, भवदधि पार लहत है ज्ञानी॥

ज्ञानी परमँह रांचै नांही, यातें रचै मुनीपद मांही।
यही, भवोदधि पार उतारै, बूड़त नाव लगाय किनारै॥
दोहा-श्रीगुरु परमदयाल ह्वै, दिय कर्तव उपदेश।
धर्म श्रवत, या मात्रपुत, धरा मुनी का भेष॥
संगै बहु दीक्षित हुये, बहुत अणुव्रत लीन।
अतिहिं सराहो खगपतिहिं, जयजयकारा कीन॥

भामण्डल ने नृपपद धारा, प्रजा महोत्सव कीन्ह अपारा।
भामण्डल को मोह सताया, यातें वेग पिता ढिग आया॥
तबही वन्दी विरद उचारे, माय विदेहा, जनक दुलारे।
जयवन्तै सुख लहै अपारा, याविध वन्दी विरद उचारा॥
दोहा-गूंजा सिय के कर्णमँह, अकस्मात रव घोर।
श्रवणत अति प्रमुदत हुई, कहां मँचा यह शोर॥
मोय तात है नृप जनक, और विदेहा माय।
एक संग उपजे दुहू, मैं अरु मेरो भाय॥

भ्रात जन्मतइ कोइ हर लीन्हा, याविध सुधकर, अति दुख कीन्हा।
विलपत अतिहिं, हिये अकुलाई, मुख की आभा हुत कुमलाई॥
लखा राम, या विधै उचारा, आय भ्रात, तो मिलै तिहारा।
काहे येता हिया दुखावै, बिना प्रयोजन विकलप लावै॥
दोहा-सम्बोधी याविध सियहिं, राघव निपुण महन्त।
सिया श्रवत हिय मुदित हुइ, दुख का कीन्हा अन्त॥

भामण्डल ताही समय, वन्दीजनन पठाय।
वेग वृत्त सूचित करहु, नृप दशरथ ढिग जाय॥

वेग मुदित वन्दीजन जाके, दइ अशीष दशरथ ढिग आके।
भामण्डल उत्पत्ति सुनाई, ताता जनक, विदेहा माई॥
हरा कोउ जन्मत ही याको, स्वजातिग्ज्ञान हुआ अब ताको।
अवत वृत्त यों पिता वहांको, ह्वै विरक्त, पद दीन्हा याको॥

दोहा—नृपदशरथ चउ सुतनयुत, परिजन पुरजन संग।
निज निज वाहन चढ़ चले, मनमँह धरें उमंग॥
नगर निकट उद्यानमँह, डेरे खगके देख।
अनुपमेय रचना निरख, अमरपुरी सम लेख॥

सर्वभूति ढिग दशरथ आके, हर्षे, कीन्ही थुति शिर नाके।
चन्द्रगती को तहां निहारा, धारें मुनि पद दीप्ति अपारा॥
भामण्डल की ओर निहारो, चित उदास, पितु मुनिपद धारो।
इक उर बैठा समूह ताका, सबही निरखें पुन मुख जाका॥

दोहा—दशरथहू निज वर्गयुत, बैठे सभा मँझार।
लख उदास भामण्डलहिं, कह गुरु शरणाधार॥
काहे होत उदास तुम, ज्ञान भाव गह लेव।
हियसे सब विकलप तजहु, कहत, सुनों चित देव॥

तात तिहारा वीरन वीरा, कर्म नशावन, गह शिव तीरा।
चारित निधि, ना कायर पावै, विरथा मानुष जन्म गँवावै॥

लाख चुरासी योनिन मांही, मनुज जनम पुन मिलहैं नांही।
यातें धन्य, मुनीपद धारें, तेही कर्म अनादि विदारें॥

दोहा–विनवत दशरथ ने उचर, हे गुरु शरणाधार।
काहे खगप विराग लिय, सर्व परिग्रह छांर॥
भवावली भामण्डलहिं, मोकों देव बताय।
काहे इन सम्बन्ध ह्वै, श्रवणत संशय जाय॥

जिय किम इमि सम्बन्धहिं पावे, काहे भाव कुभाव रचावे।
क्षणमँहगह पुन ताको त्यागे, अन्य गहे पुन त्यागन लागे॥
कबहुँ न चितमँहशान्तीपाया, विषयनमांहि अनादि गमाया।
यातें गुरुवर मुझे बतावो, हियकासंशय वेगमिटावो॥

दोहा–श्रवत प्रश्न श्रीगुरु उचर, सुन न्यो सकल समाज।
कर्मन वश या जगतमँह, कबहुँ न सुधरा काज॥
कह भामण्डल का कथन, विस्तृत पूर्व बताय।
ताहीविध श्री गुरु कहा, सुना चन्द्रगतिराय॥

विधि प्रपंच अतिशय दुखकारी, हो न कबहुँ इमिगती हमारी।
धिक धिक छिः छिः कर्मन माया, पूर्व काह कुभाव रचाया॥
याभव भ्रात बहिन गति धारी, पुन कुभाव की, भ्रात विचारी।
तज अजानता, ज्ञान लहाया, निजरु वाह सम्बन्ध लखाया॥

दोहा–यों चिन्तन कर चन्द्रगति, पद भामण्डल दीन।
आय यहां दीक्षा गही, स्वातमहित लवलीन॥

सुन दशरथ हिय हर्ष लिय, कहा धन्य गुरुराय।
संशय मेंटन काज प्रभु, दरपणवत दर्शाय ॥

भामण्डल श्री गुरुहिं उचारी, हेगुरु मेंटो शल्य हमारी।
प्रेम चन्द्रगति कीन्ह घनेरा, लालन पालन कीन्हा मेरा ॥
परभव का संबंध कहाया, येही भवमँह या उपजाया।
याका भेद मुझे बतलावहु, मेरे हिय की शल्य मिटावहु ॥

दोहा-श्रवत गुरू, याको कहा, है पूरव सम्बन्ध।
जस किय तस फल हू लहत, जगत विवश, विधि बन्ध ॥
दारुग्राम, इकदिज नमुचि, तिय अनुकोशा तास।
सुत अनुभुति, सरसा तिया, रख कुचाल की आश ॥

इक कयान द्विज, मांयुत आया, तासे याने नेह लगाया।
कयान सरसा दोऊ भागे, तव अनुभुति, तिय खोजनलागे ॥
जबही नमुचि विदेशन छाया, गृहे आय सुत, वधु ना पाया।
चाला येहू, खोजन दोई, विपन मांहि मुनि दर्शन होई ॥

दोहा-चित्त मांहि अति खिन्न है, मुनि प्रति शीस नमाय।
कहा, प्रभो, सुख शांतिका, मारग देव बताय ॥
श्रवत गुरू, तासे कहा, धर्म देत है शान्ति।
विषय कषायें तजत ही, मिटती सकल अशान्ति ॥

अशान्ति मेंटन, मुनिपद धारो, स्वरूप आतम शान्त निहारो।
हियमँह ममता छांड़ो सारी, रम स्वरूप, बन आतम विहारी ॥

निधि रत्नत्रय आतम जागे, विषय कषाय तताइ, न लागे।
अमिय वचन श्री गुरू उचारा, श्रवतहिं याने मुनिपद धारा॥

दोहा—सब विकलप को तज नमुचि, गहा धर्म से राग।
विषय कषायन विरत हो, तबहिं जगो वैराग॥
तिय अनुकोशाक्यान मां, द्विज दीक्षा सुन लीन।
वेहू होय विरक्त चित, दीक्षा धारण कीन॥

कयान, सरसा लैके भागा, सरसापति, तिय खोजन लागा।
समय पाय दुहु मृत्यु लहाई, कुगतिन मांही विपदा पाई॥
सरसामर गति मिरगी धारी, दवमँहजर सम भाव विचारी।
यह भव चितोत्सवा की पाई, भ्रमतक्यान, पिङ्गलगति जाई॥

दोहा—चितोत्सवा पिङ्गल दुहुन, भागे नेह लगाय।
पूर्व कह विस्तृत कथन, पाठक लेव लखाय॥
सरसापति, भव हंस लह, कीन्ह बाज विध्वंस।
किन्तु धर्म सुन कर्णमँह, उपज स्वर्गमँह हंस॥

चयहु, कुन्डलमन्डित राया, नमुचि तपै तप, समता पाया।
अन्त समाधी धारण कीन्ही, चन्द्रगतिहिं पर्याय सुलीन्ही॥
क्यान माय तप दुर्धर कीन्हें, सुरी होयकें अतिसुख लीन्हें।
चयके हुई विदेहा रानी, या भव की तुम माय कहानी॥

दोहा—अनुकोशा हू तप तपै, लीन्ही सुर पर्याय।
चन्द्रगती की तिय हुई, सुरपद तजकें आय॥

पूर्व माय पुन मां सदृश, याने कीन्हो प्यार।
पाला पोपा है तुझे, रख सुतवत व्यवहार॥

यों पूरब सम्बन्ध कहाना, भामण्डल से गुरू बखाना।
सिय लख याह सहोदर भाई, गले लाग अति रुदन मँचाई॥
तब भामण्डल धैर्य बँधाया, पूर्व पुण्य, पुन लाय मिलाया।
दशरथ, राम ढ़िगै द्रुत आके, मिले परस्पर हृदय लगाके॥

दोहा-भेजा दूतहिं जनक पै, आय वृत्त बतलाय।
चलहु वेग सुतसे मिलो, मैं, विमान लै आय॥
बाट जोहते याविधै, चातक चाहत मेह।
चकोर चाहै चंद्र जिम, कब मिलाप ता लेय॥

श्रवत जनक हियमँह हुलसाकें, हिये लगाय वेगही याकें।
पुन नृप पूंछा बारम्बारा, येहू पुन पुन, पुनहु उचारा॥
चिन्त्यजनक कँह स्वप्न लखाया, या है सत्य समझ ना आया।
अजुगत बात सुनाई आकें, वस्त्राभूषण दीन्हें ताकें॥

दोहा-परिजन पुरजन सह जनक, चाले बैठ विमान।
आय मिले अति हर्ष युत, को कर सकै बखान॥
भामण्डल पितुपद नया, हियसे जनक लगाय।
चूमें पुचकारें पुनहु, हिये न हर्ष समाय॥

पुलकत माता हिये लगाई, मनो आजही, सुत मैं जाई।
लै भामण्डल गोद बिठारी, पुन पुन चूमें दै किलकारी॥

विधु वारिधि सम प्रेम समाया, दृश्य अपूर्व तहां पै छाया।
निरख निरख सब प्रमुदित होवें, बिछुड़न ताप हृदय से खोवें ॥

दोहा—प्रेम विवश मूर्छित सकल, हुये मनोचित्राम।
मरण निकट पावें सुधा, हिम मिल, ग्रीषम घाम ॥
पूर्व दिशा रवि सुत लहै, त्योंहि विदेहा माय।
बिछुड़ो सुत मिल, इमि मनो, अक्षय निधि, मिलि आय ॥

दिय उलाहना माता मारी, ऐते दिन क्यों सुधहिं बिसारी।
बाल केलि दूजे गृह कीन्हा, मोय वियोग दुःख अति दीन्हा ॥
ऐते दिवस काह ना आया, जबरन मेरा हृदय दुखाया।
उपजी दया पुत्र अब तोको, कँहतक प्रेम हृदय का रोकों ॥

दोहा—तबहिं स्रवत पय युगल कुच, पुलकि विदेहा माय।
कह न सकत उमगत हृदय, रह्यो नयन जल छाय ॥
एक मास मिलजुल रहे, अमित उछाह उदोत।
जिमि पावसमँह उमड़ते, नद नाले जल स्रोत ॥

दशरथ गृह पहुनाई कीन्ही, बढ़ी प्रीत दिन दून नवीनी।
पूर्व पुण्य वश, मिलाप पाये, आनँद मंगल बजे बधाये ॥
गवनन की जब घड़ी लखाई, सिय तबहीं हियमंह अकुलाई।
लखा सहोदर, बहु समुझावें, धैर्य बँधाय यहां ते जावें ॥

दोहा—लखि वियोग पितु, माय भ्रात, सिय हिय अति अकुलाय।
धैर्य धराया सबहिं ने, तबहि शान्ति हियलाय ॥

सास, ससुर, पिय सेव में, चूक कबहुँ ना लेय।
लख सुशील व्यवहार इमि, धन्यवाद सब देय॥

मिलजुलकें मिथलापुर आये, कनक आदि ने हिये लगाये।
पुन भामण्डल आग्रह कीन्हा, मात पिता को संगै लीन्हा॥
बैठ विमान थान निज आके, कीन्ह महोत्सव धूम मँचाके।
अमरपुरी सम नगरी सोहै, सुर सुराङ्गना जनता मोहै॥

दोहा–पुण्योदय सबही सुलभ, इष्ट योग सुख लेव।
धन कन कंचन राजसुख, आय मिलत स्वयमेव॥
पै दुर्लभ निज रूप लख, जाजिय हिये समाय।
"नायक" रमत स्वरूप नित, अविनाशी पद पाय॥

। इति एकादशमः परिच्छेदः समाप्तः।

अथ दशरथ को वैराग्य उत्पन्न होना। केकई का वरदान मांगने का वर्णन प्रारंभ।

वीरछन्द—

गौतम गणधर प्रती, उचारा, श्रेणिक नरपति, सभा प्रधान।
दशरथ हियमँह, विराग छाया, अब आगे का करहु बखान॥
यों सुन, गणधर प्रमुदित होके, इमि कह, निज वच सुधा समान।
पुन दशरथ ने, गुरु ढिग आके, शीस नाय, यों उचरा बान॥

दोहा—पूर्व वृत्त, मेरा कहो, हे गुरु परम दयाल।
तांके, जानन की मुझे, इच्छा उठी विशाल॥
जिन दीक्षा, धारो चहों, तास, उपाय बताव।
आतमबोध, जागा हिये, मुक्ति पुरी की चाव॥

यों सुन, गुरुने, गिरा उचारी, भ्रमत अनादि, सहे दुख भारी।
ताका वर्णन, को कर पावै, वर्षों तक कह, अंत न आवै॥
संबंधित, संक्षेप बतावूं, आतमबोध दुर्लभ, समझावूं।
या बिन ही, जिय, बना भिखारी, सुनहु पूर्व की, कथा तिहारी॥

दोहा—हस्तिनागपुर, नगर मँह, बसै, उपास्ति नर एक।
तिया दीपनी, नाम तसु, मानिनि विगत विवेक॥
साधु संत, निंदै सदा, दैन न दे मुनिदान।
अंत समय, दुरगति गई, भोगे, दुःख महान॥

दान उपास्ती, विधवत दीन्हें, ता प्रसाद, सुरगति गह लीन्हें ।
चयकें मनुष गती मँह आया, याका नाम धरण, कहलाया ॥
व्रत, तप, दान पुनहु, ये कीन्हें, अंतिम भोगभूमि सुख लीन्हें ।
तँहतें सुरपद पुन ये पाके, महा सौख्य, भोगे तँह जाके ॥

दोहा–तँहतें चय, नरतन लहा, नंदिवर्ध तसु नाम ।
पितु विराग लह, याहि पुन, दीन्ह राज, धन, धाम ॥
श्रावक व्रत, सुव ग्रहण किय, धर पुन मरण समाध ।
स्वर्ग पञ्चमें सुर भया, भोगा, सौख्य अबाध ॥

सुरपदतें चय, नर भव पाया, नाम सूर्यजय, नृपति कहाया ।
याका पितु, संग्राम रचायो, तिहिं अवसर, ढिग इक सुर आयो ॥
ताने पूरव वृत्त बताया, तुम तज नरक, मनुज भव पाया ।
मैं उत जाय, तुम्हें संबोधा, नर्क लहन पुन, बनत अबोधा ॥

दोहा–सुर के, सुन यों वयन नृप, चितमँह, हुआ उदास ।
सुतयुत, दीक्षा आदरी, मुक्ति मिलन, हिय आस ॥
धार समाधी, सुत तभी, दशम स्वर्गमँह जाय ।
चयकें, तूं दशरथ हुआ, नगर अयोध्यहिं आय ॥

नंदिवर्ध पितु, मुनिपद पाके, सुख पाये, नवग्रैवक जाके ।
तँहतेंचय हम नरभव धारो, सर्वभूत है नाम हमारो ॥
सूरजजय पितु, मुनि पद धारे, धर समाधि, सुर, गती सम्हारे ।
तँहतेंचय, नर मांही आया, मिथुला का नृप, जनक कहाया ॥

दोहा-आया था संबोधवे, जो सुर, तज सुर धाम।
भया जनक का भ्रात लघु, कनक नाम अभिराम ॥
याविध सबहिं भवावली, गुरु ने करी बखान।
जिय, निज कर्म कमाय पुन, मिल, बिछुरत इक थान ॥

विश्व विपिन, अति अगम कहावे, हितू न जिय को कोउ दिखावे।
करै कर्म की, धरणी जैसी, फलै तास विध, ताको तैसी ॥
परवस्तू, इक निमित कहावे, मूल आप ही, भाव उपावे।
मोह, राग, रुप दुख के दाता, यातें, इनको, मेंटो भ्राता ॥

दोहा-सुन गुरु वच अमृत सदृश, हुआ प्रफुल्लित गात।
गुरुपद पंकज नमन कर, चला नृपति हर्षात ॥
बारह भावन भाय चित, दशरथ हिय हुलसाय।
शीघ्र मुनिव्रत को धरूं, याविध मनमँह चाय ॥

जिमि माखी कफमँह फँस जावे, करै यत्न बहु, निकस न पावै।
फँसे जीव, जग कर्दम मांही, बिन सुबोध वे निकसें नांही ॥
यातें मैं शिर पोट उतारूं, निजपद, सुतको, अब दे डारूं।
योग्य पुत्र है राम विवेकी, सुध रख धर्म, कर्म करवे की ॥

दोहा-यों चिंतत, द्रुत नृपति ने, सेवक लिया बुलाय।
परिजन, पुरजन, सबहिं ढिग, वाको दिया पठाय ॥
आये, द्रुत सब, नृप ढिगें, सविनय किया प्रणाम।
हो आज्ञा, इम सबहिं कह, हे नृप सुख के धाम ॥

योंसुन, नृपने गिरा उचारी, सुनहु सभी, हिय चाह हमारी।
जगत रमणता, हिय ने त्यागी, मुक्ति रमणता, हिय मँह जागी॥
बूडत भवदधि बहुदुख पाये, शिवनगरीके घाट न आये।
कर्म योग तें, सुघाट पाया, लहूं अचल सुख, मो हिय चाया॥

दोहा—अब मैं दृढ़ निश्चय कियो, करों कर्म अरि छार।
महा भयानक कर्म वन, भस्म करों, दव जार॥
जगा बोधि दुर्लभ अबै, जगतें हुआ उदास।
रत्नत्रय, मांही रमूं, शिवका परम हुलास॥

रामचन्द्र को वेग बुलावहु, नृप पद दै, अभिषेक रचावहु।
योंसुन, सब हिय, विषाद छाये, मनो उपल, चित्राम गढ़ाये॥
शोकाकुल भुवि दृष्टि निपाती, अनिमिष पलक न ऊरध आती।
व्याकुल वदन, नयन जल छाये, हुये मूक, वच शक्ति गमाये॥

दोहा—यों लख सबहिन को नृपति, घनगर्जनसम, बोल।
वृथा शोक, अब मत करो, मैं लखि, निधि अनमोल॥
तउ रुदने, दरबारि जन, कछू न देत जवाब।
आनन यों निष्प्रभ हुये, जिमि मोती, बिन आब॥

अंतःपुरमँह जब सब जानी, हुईं आकुलित सबही रानी।
मानो हुई, गाज की मारीं, हिये मांझ या छिदीं कटारीं॥
सुना भरत ने याहि सँदेशा, सोचै, मोकों, नांहि अँदेशा।
मैं तो, पितु के, पहिले जावूं, शिवहित, सांचा स्वांग, रचावूं॥

दोहा—मुझे न चिन्ता राज की, को, ले, काको देव।
पुन कासे है पूछनो, मैं अब दीक्षा लेव॥
याविध हुआ, उदास चित, केकइ ने लख लीन।
समझे भरत स्वभाव को, दृढ़निश्चय, ये कीन॥

पिता संग ये, वनमँह जावें, यामें रंच फरक ना आवें।
मेरी हुई, दोउ उर हानी, पति, सुत दोनों से बिछुड़ानी॥
भई निमग्न, अगम दुख सागर, शोक अपार, छोट हिय गागर।
"वचन" धरोहर, की सुध आई, शोक त्याग, नृप ढिगै सिधाई॥

दोहा—सादर दशरथ याहि तब, लिय समीप बैठाय।
विनत वदन बोली तबै, सुनहु विनय नरराय॥
कौन कमी मोमँह लखी, निष्ठुर किया विचार।
कंठ रुद्ध, नयनन सजल, नीची दृष्टि निहार॥

सुन दशरथ याको समझाया, नांहि प्रिये, कछु कमी लखाया।
हिये मांह, सुध निज की जागी, यातें चित अब हुआ विरागी॥
यों सुन, केकइ गिरा उचारी, सुनहु नाथ, तदि विनय हमारी।
आप ढिगै, मैंने "वच" नाखा, आप कहा था, मैं "वच" राखा॥

दोहा—जब यांचो, तब देवँगो, याविध, वच तुम भाख।
सब वहिनन के सम्मुखें, दीन्ही, सबकी साख॥
प्रथम विनय, येही, करत, तज दो, त्यजन विचार।
यदि ना मानो, देव तब, "वचन" रखा भंडार॥

यों सुन, नृपने प्रमुदित होकें, यों कह, अब मैं, रुकों न, रोकें।
रखा कोप मँह "वचन" तिहारा, चह, सो ल्यो, ऋण चुकै हमारा ॥
कायर जीव न मुनि पद पावें, अपना नरभव वृथा गमावें।
यातें, मैं अब निश्चय जावूं, तोकों "वच" दै, कर्ज चुकावूं ॥

दोहा—पति वच सुन कहि केकई, यांचन, हिय सकुचाय।
प्रथम मांग, पूरो यही, ना तुम वनमँह जाय ॥
ना मानो, तदि यांचती, देव, भरत को राज।
"वचन" निबाहो आपना, हे जगके, सम्राट ॥

सुन दशरथ कहि, ल्यो मन चाहा, मैंने, अपना, वचन निबाहा।
रघुवंशिन की "आन" कहावें, प्रान जांय, तदि 'वचन' न जावै ॥
सूर्य चंद्र मर्यादा भंगें, रघुवंशी ना "वचन" उलंघें।
यातें दीन्हा "वचन" तिहारा, नीक किया तुम कर्ज चुकारा ॥

दोहा—राम, लखण, बुलवायकें, सबविध दिय समझाय।
कहा स्वयंवर का कथन, रणमँह करी सहाय ॥
सारथिपण अद्भुत अगम, विक्रम, यानें कीन्ह।
जीत हुई, नृपगण अछत, विजय पताका लीन ॥

तब प्रमुदित ह्वै मैं "वच" दीन्हा, हर्षित होकें, यानें लीन्हा।
दिया "वचन" मेरे ढ़िग नाखा, हो प्रमुदित मैंने "वच" राखा ॥
आज "वचन" को अपना यांचे, राज्य भरत को, ये अब जांचे।
करों आज नहिं "वचन" चुकारा, तो अपयश हो, जगत मँझारा ॥

दोहा-भरतचित्त वैराग्यवश, संग हमारे जाय।
काविध सुख, केकइ लहै, पति, सुत, दोय गमाय॥
सुत वियोग ना सह सकै, केकइ देहैं प्रान।
हानि दोउ विध देखिये, खाई, कूप समान॥

यदि लघुसुत को नृपपद देवूं, राजनीति तज, अपयश लेवूं।
ज्येष्ठ पुत्र को ना पद दीन्हा, न्याय उलंघन, दशरथ कीन्हा॥
याविध चिन्ता अति है मोको, "वचन" देन भी काविध रोको।
"वचन" न देहों, अपयश भारी, रघुवंशिन की "आन" बिगारी॥

दोहा-सुनें वयन यों तातके, मिष्ट वचन, कह राम।
सुनहु तात, जग पूज्य तुम, सकल गुणन के धाम॥
"वचन" अटल है आपका, रघुवंशिन की आन।
टर न सकत है जगतमँह, चहै जांय, ये प्रान॥

चंद्र, सूर्य, मर्यादा टारैं, पै मो पितु ना, "आन" निवारैं।
"वच" की कीमत, है ना जाकी, मरण समान समस्या ताकी॥
"वचन" विलोपन हो अब कैसे, जब समरथ, तुअ सुत, हम जैसे।
प्रान जांय, पितु वचन निवाहैं, तुअ "वच" की मर्यादा चाहैं॥

दोहा-जब हम, तुम से ऊपजे, हमहू कर्ज चुकांय।
धिक, धिक सुत जो वखत पै, कामें, पितुहिं न आंय॥
जिनने यो तन दीन्ह पुन, कुल, कीरत, धन, धाम।
तिन महिमा, को उच्चरैं, सूर्य चंद्र सम नाम॥

कुल उजयारै सुत जगमांही, प्रगटै शशि, तम रहता नांही ।
सुयश फैल, जिमि गंध सुहाती, जग को, गुणन सुगंधी भाती ॥
वट तरु सम, ता फैले छाया, जा पितु ने सुत से सुख पाया ।
ताकी महिमा, हरि हू गाहै, जो सुत निज कर्तव्य निबाहै ॥

दोहा—पिता, पुत्र में हो रहो, इत यह "वचन" विलास ।
उत गवने, वन को, भरत, त्याग, सकल जग आस ॥
रुदने सबहिं, विलाप किय, शब्द रहो, नभ फैल ।
शोकाकुल पहुँचे सभी, रोक भरत की गैल ॥

राम लखण हू तँहपै आये, भ्रात भरत को, हिये लगाये ।
कहें भरत सों, कहा विचारो, मां पितु आज्ञा, माथै धारो ॥
जो सुत कर्त्तव, ताकूं पालो, तात वचन को, कभी न टालो ।
यों कह, तात ढिगै, द्रुत लाये, सादर पितु ने, गोद बिठाये ॥

दोहा—कहा, वत्स तूं कुल विषें, करता पूर्ण उदोत ।
रवि, शशि, का तो साम्हनें, जैसी तारी जोत ॥
पुत्रपणा शोभै जगत, मां पितु जाहि सरांह ।
जाकी छाया सों जगत, सुख पावै, दुख नांह ॥

तप कठोर, मृदु गात तिहारा, वय लघु, किमि तप करन विचारा ।
समय पाय सब शोभा देवै, बीज समय गत, फल तरु लेवै ॥
ता सम, तुम सुत, सबहो मेरे, शशि सम दाता, सुःख घनेरे ।
यातें, मानो बात हमारी, ज्यों सुख पावै मात तिहारी ॥

दोहा–तात वचन सुन, कहि भरत, सुनहु तात, मो बात।
कर्म अरी संहारहों, भोग न मोंहि सुहात॥
वय लघु उपमा देत किमि, शक्ति लघू ना होत।
द्वितिय चंद्र, निशि तिमिर हर, जगमँह करत उदोत॥

सुगुण पुञ्ज, जग मँह हो ज्ञानी, पुन हू रोकन की विधि ठानी।
गृहमँह, पक्षी रैन बसेरा, जिमि निशि, तरु पै बैठ घनेरा॥
प्रात हुये, चहुँदिशिमँह जावें, तासम, गतिको, हमहू पावें।
जहां योग, तँह होय वियोगा, जगवासिन को, हो यह रोगा॥

दोहा–यम को, थिरता है नहीं, कहा बाल, वृध होय।
वेग सँहारे जगत मँह, इन्द्र, चक्रि हो कोय॥
जो सुख होतो जगत मँह, तीर्थंकर क्यों त्याग।
क्यों, वन मह वे जायकें, धरते आत्म विराग॥

यातें, अब ना, मोकों, रोको, धर्म कार्य मँह, कभी न टोको।
जब मैं सुत हूं, पिता तिहारो, शक्ती क्यों पुन, लघू विचारो॥
जिय की, शक्ती लघु है नांही, नाश करूं अरि, क्षण के मांही।
अब मैं, कर्म कुकाष्ठ विदारों, तप अग्नी प्रजलाकें जारों॥

दोहा–अब ऐसा उद्यम करूं, काल खान ना पाय।
जन्म, जरा, मृत मेंट, पद, अविनाशी प्रगटाय॥
निर्ममत्त्व मम मन भयो, समझों जीव समान।
मात पिता, सुत तिय सबै, झूंठे नाते जान॥

सुत विराग वच, सुन हरषाये, दशरथ, फूले नांहि समाये।
दृढ़ श्रद्धालू, सुत विज्ञानी, शीघ्र वरैगो, ये शिवरानी॥
पुन बोले, सुन, भरत कुमारा, तात जान, गहो वचन हमारा।
जो तूं कहै, सत्य मैं मानो, एक वचन भी, झूंठ न जानो॥

दोहा-जिनसे घरमँह ना धनी, कहा बनै बन मांहि।
विषय भोग, अरुची नहीं, धनहू हितप्रद नांहि॥
यातें अब तुम गृह विषें, कछु दिन, समय बिताव।
माय सुखी कर, समय लख, तपहित, वनमँह, जाव॥

कहा, भरत, मो नांहि सुहावे, गृही धर्म, ना शिव पहुँचावे।
शक्ति हीन को, लागै नीका, वीर वृत्त मँह लागै फीका॥
जगत वंद्य, तीर्थंकर यातें, गृह तज रमते, मुक्ति प्रिया तें।
यातें मैंहू, वनमँह जाहों, कर्म काष्ठ को, शीघ्र जलाहों॥

दोहा-सुन दशरथ ने कहि तुरत, सुनहु पुत्र, मो बात।
मुनि पद ही सब धारकें, सबही, शिव ना जात॥
कछु तद्भव, कछु भव धरत, यो निश्चय कछु नांहि।
भरत विरागी गृह विषें, यों समझो, हिय मांहि॥

विहँस भरत बोले मृदु बैना, निवास गृह मँह, मोय रुचै ना।
सिंहहिं प्रिय ना, श्यालन कामा, गरुड़ बसै किम, पन्निन धामा॥
रंच विलास, महा दुखदाई, गृह निवास, ना हो सुखदाई।
यातें आज्ञा देवो मोको, तप धारन मँह, पिता न रोको॥

दोहा—तुम हू क्यों पुन गृह तजत, यदी न बाधक होय।
मोकों रोकत काह पुन, रुकों न मैं भी सोय॥
तात धर्म, रक्षक कहो, या जो, देत डुबाय।
सोचो, तुमहू तात मम, क्यों वर्जत, नरराय॥

हरषे दशरथ, सुन सुत वानी, धन्य भरत, तुम दृढ़ श्रद्धानी।
निकट भव्य, जिन शासन वेत्ता, बोधि ज्ञान लह, मोक्ष निकेता॥
पुन भी, मैं हूं तात तिहारा, यातें मानो, वचन हमारा।
"वचन" पलै मम, लह सुख माता, योंकर, सबकों हो सुख साता॥

दोहा—अहो, बाल हठ करत तुम, यह ना जानें कोय।
लोक करेंगे हास्य मम, अयश हमारा होय॥
"वचन" विलोपा, देयकें, रघुवंशिन "वच" व्यर्थ।
मान भंग हो लोकमँह, पुन जीवन, किस अर्थ॥

माय शोकतें प्राण गमावे, मेरी साख, बिगड़ अब जावे।
यातें मानो, बात हमारी, हिये लगाकें, तात उचारी॥
सुन संवाद, राम ढिग आकें, कहा, भ्रात सुन चित्त लगाकें।
विमल, धवल यश तेरा आवे, पिता वचन, सतपुत्र निभावे॥

दोहा—प्राण त्याग माता करै, पिता वचन, हो भंग।
हानि दुहू उर देखिये, दोनहु कठिन तरंग॥
यातें मानों वचन मम, राजभार तुम लेव।
मैं बनवासी होवँगो, आज्ञा मोकों देव॥

प्रथम पुनीत पिता पद वंदे, पुन नमि मातु चरण अभिनंदे।
तरकस लेय पीठ पर बांधो, निज कर कमलन धनुपहि सांधो॥
विपिन गमन की सुन तैयारी, मूर्छा, मातु पिता ने धारी।
चेतनता ज्यों त्यों कर आई, हाय राम, यों मुख निसराई॥

दोहा–शोकाकुल माता विकल, बहुविध कीन्ह विलाप।
गवनत मोकों त्यागकें, देत असह संताप॥
यह दुख मैं ना सह सकूं, चलूं, तिहारे संग।
अवलंबन इक, माय को, सुत, माता का अंग॥

सुनत राम कहि, सुन भो माता, तूं है जननि, जन्म अवदाता।
पितु ने "वचन", निवाहन काजा, भ्राता भरत, बनायो राजा॥
अब इत वास उचित है नांही, वास बनावूं, विन्ध्यगिरि मांही।
या वारिधि तट, कुटी बनाहों, तँहतें आय, तुझे ले जाहों॥

दोहा–राज भरत को ना चलै, मोय सम्मुखै होत।
रवि सम्मुख पुन किमि दिपै, हो ना शशि उद्योत॥
याहित मैं उत जातहों, चितमँह, धारहु धीर।
देवो आज्ञा मोय को, होवो, मती अधीर॥

सुन कौशिल्या पुनहु उचारी, सुनहु लाड़ले राम, हमारी।
तिय के होवें, द्वय आधारा, पती, पुत्र ही जगत मँझारा॥
प्राणनाथतो दीक्षा धारें, सुत बिन को, आधार हमारें।
गहलूं शरणा, अबमैं काको, तुमहु बतावो, जगमँह याको॥

दोहा—योंसुन विनवत राम कहि, सुनहु माय, मो बात।
विपिन भयानक, अति दुसह, जगमँह है विख्यात॥
कर्कश महि, चलवो कठिन, नांहि सहज यो काम।
कुटी बनाके आऊँगो, लै, चलहों निज धाम॥

तुझे लेयवे निश्चय आवूं, शपथ चरण की खाके जावूं।
योंकह, धैर्य मात को दीन्हा, आप गमन का उद्यम कीन्हा॥
राम गमन लख, विकल विनीता, चलहुँ संग बोली तब सीता।
बिन प्रीतम के नीक न लागे, योंकह, हुई रामके आगे॥

दोहा—सास श्वसुर पद पद्म नमि, गवनी प्रीतम संग।
शचि सोहे जिमि शक्र सँग, सिया, राम अर्द्धंग॥
धवल प्रेम यों दंपती, बिन जल रहै न मीन।
तासम गति इनकी हुई, दुख, सुख मँह तल्लीन॥

लखा दृश्य लक्ष्मण बलधारी, कुपित होय, मन मांहि विचारी।
तियवश ह्वै पितु, किया अकाजा, ज्येष्ठ पुत्र तज, लघु सुत राजा॥
धिक तिय बुद्धि विचार विहीनी, ना सोचे, मैं अनरथ कीनी।
स्वार्थ परायण, चित्त कठोरी, कर दइ अनहोनी बरजोरी॥

दोहा—राम भ्रात, मुनि तुल्य जनु, पुरुषोत्तम अविकार।
चाहूं तो, मैं भरत से, छीन लेहुँ अधिकार॥
राघव को यूं राजपद, रोकनहारा कौन।
करै युद्ध, मो सम्मुखें, बली विश्व मँह जौन॥

पुन विवेक लक्ष्मण हिय आया, सोचै, वृथा विचार उठाया।
मुनि पद धरन, पिता वन जावै, अब मन तूं क्यों, रार मँचावै ॥
न्याय, नीति, पितु भ्राता जानें, हम विरथा रिस काहे ठानें।
धरें मौन, वन राघव संगी, यों चितमँह लख, उठी उमंगी ॥

दोहा—मात पिता पद पद्म नमि, चला लखण सज साज।
सिय के पांछे, विनय युत, मनु सिय रक्षण काज ॥
कर प्रणाम गुरु जनन को, सबसें आशिष पाय।
अनुज, सीय सँग विपिन को, गवने श्री रघुराय ॥

भरत, शत्रुहन रुदन मँचाये, धीर धराकें, हिये लगाये।
परिजन, पुरजन, सकल सशोका, रामहिं, साग्रह, सबनें रोका ॥
अब ना फिरें सबन ने जानी, बोले व्याकुल जय जय वानी।
इनसम निष्पृह ना जग मांही, त्यजत विभूति देर लगि नांही ॥

दोहा—पुर नर, नारी शोक वश, अतिशय रुदन मँचाय।
कहहिं परस्पर लोक सब, कोने, इनें मगाय ॥
नगरी अब सूनी भई, रहें न हम या थान।
मनो नगर अब मृत भयो, भासै जिमहिं मसान ॥

पतिव्रता सिय, जगमँह भारी, होय कष्ट अति, नांहि विचारी।
अनुज भक्ति वश लक्ष्मण वीरा, चला जात है, राघव तीरा ॥
विलपत छांड़ी निज महतारी, त्यजत सबहिं वन, विपिन विहारी।
शोभा इनकी याविध गाई, द्वय गिरि बीचें सरित सुहाई ॥

दोहा—आगे राघव बीच सिय, पीछे लक्ष्मण वीर।
रवि, शशि, मंधी मध्य सिय, दिशि निर्मल, रघुवीर॥
पुरुषोत्तम ये भ्रात दोउ, जगमँह उपमातीत।
केहरि सम निर्भय चलत, चितमँह ईति न भीति॥

राघव लक्ष्मण सोहैं सीता, चले जात मग, प्रेम पुनीता।
सारी जनता मिलकर रोवें, पुन पुन ये सबकों संबोधें॥
जावो लौट, वेग हम आवें, पितु वच पालन अभि हम जावें।
समझावनमँह समय बिताया, तबहीं संध्या समय लखाया॥

दोहा—चैत्यालय अरनाथमँह, निशि का समय बिताय।
द्वारपाल ठहराय इन, पुरजन दिये भगाय॥
बहु विकलप पुरजन करें, परिणामन अनुसार।
कोउ नृपति को दोष दे, कोउ केकइ दुखकार॥

प्रात होत ही, चारों रानी, आ दशरथ ढिग, विन्ती ठानी।
राम लखण बिन, रहो न जावे, हम सबके हिय, चैन न आवे॥
कुल जहाज, अब कौन खिवैया, शोक सिन्धुमँह बूड़त नैया।
नाथ, वेग अब, हाथ बढ़ाओ, उन्हें बुलाके पार लगाओ॥

दोहा—जगवासिनि की यों दशा, क्षण प्रति, क्षण, अनुकूल।
भूलत यों मिथ्यामती, समझ शूल क्षण फूल॥
कीन्हों केकइ कुमति वश, यों मांगा वरदान।
निरख गमन, सिय, राम, भृत, लीन्हा शोक महान॥

लख दशरथ, आई हैं रानीं, अति विसूरती हिय अकुलानीं।
पै अब चितमँह मूर्छा नांही, अति निष्पृह, रम स्वरूप मांही ॥
यातें याविध, इन्हें उचारो, जगसे अब वश, नांहि हमारो।
अब जो रुचै सोइ तुम कीजो, मोसों आशा सब तज दीजो ॥

दोहा-जबतक, भव भ्रममँह फँसा, तबतक, ह्वै उत्पात।
दुख ही दुख चहुँदिशि सहो, किय स्वरूप का घात ॥
यातें अब ममता तजी, समता चितमँह आय।
रमता आतमराममँह, ज्ञान लखण सुखदाय ॥

कर्माधीन सकल दुखदानी, रोवत हँसत मत्त सम प्रानी।
क्षण सुख क्षण दुख रूप चितारै, मत्त समान अवस्था धारै ॥
द्विविध परिग्रह मैंने छोड़ो, गृह कुटुम्ब से नाता तोड़ो।
जावो उन ढिग या ना जावो, लाओ अथवा ना तुम लाओ ॥

दोहा-नांहि प्रयोजन अब मुझे, शिव मग की है चाह।
आप रूप जिय ने लखा, मिटी जगत की दाह ॥
जगमँह येही श्रेष्ठ जनु, शीघ्र मोक्ष को देत।
"नायक" रमत स्वरूप नित, रत्नत्रय से हेत ॥

इति द्वादशमः परिच्छेदः समाप्तः।

अथ रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता का विदेश गमन, दशरथ का दीक्षा ग्रहण, भरत का राजपद भोग वर्णन

ह्वै निद्रा वश सँग साथी जब, राम लखण सिय, गमन विचार।
जिनपद पंकज शीस नाय द्रुत, धनुष बाण निज करमँह धार॥
राम लखण बिच शोभित सीता, चले जात मग परम पुनीत।
दक्षिण दिशि प्रस्थान किया इन, रंच न हियमँह ह्वै भयभीत॥

दोहा—प्रात होत जागे सबै, लख न परे सिय राम।
सत्वर चल आये ढिगै, सविनय किया प्रणाम॥
सिय सँग गवनहिं मन्दगति, वेग चला ना जाय।
या कारण साथी सकल, मिले राम से आय॥

खबर सुनत मगनृप उठ धाये, भोजन व्यञ्जन बहुविध लाये।
घड़े घड़े नृप ढिगमँह आके, किय स्वागत सामग्री लाके॥
चलत चलत अटवीमँह आये, महा भयावह बनी लखाये।
मत्त मतंगज लखे तहां पै, सिंह नाग फुन्कार वहां पै॥

दोहा—वचन मान बहुतक नृपति, बहुरे अति दुख पाय।
चले संग बहु हर्ष धर, रामभक्ति हुलसाय॥
ये चाहें बहुरें सबै, पैं नँ तजें वे संग।
मुदित होय रूपहिं निरख, चितमँह प्रीति अभंग॥

चलि आये इक सरिता तीरा, महा अगम जल अति गम्भीरा।
कहें नृपति प्रभु पार उतारहु, संग हमहिं ले आप सिधारहु॥
मञ्जुलवच बोले श्री रामा, जाहु लौट सब निज-निज धामा।
हुआ यहां तक संग हमारा, अब ना बनहै संग तिहारा॥

दोहा—योंकह द्रुत श्रीरामने, सीय हाथ गह लीन।
प्रविशे श्रीजिन पद सुमिर, ह्वै सरिता जल छीन॥
कटि प्रमान तब जल हुओ, इनके पुण्य प्रभाव।
सहजहिं उतरे राम सिय, लक्ष्मण हिय हर्षाव॥

बहुरे बहुनृप दीक्षाधारी, यही सार मनमांहि विचारी।
गृह गोधन सुत तिय परिवारा, सब चितमँह अब लखें असारा॥
चल कोयक दशरथ ढिग आवें, रुदने मगका वृत्त सुनावें।
कहें हमें प्रभु धीर न आवै, निज हिय की अब काह सुनावै॥

दोहा—नरपति भरतादिक सकल, चितमँह, शोक उपाय।
पै दशरथ को, रंच नहिं, वेग, गुरू ढिग आय॥
दीक्षा लीन्ही, हर्षयुत, केश लुंच कर दीन्ह।
रत्नत्रयनिधि हिय लखत, आत्मरमणता कीन्ह॥

उग्र उग्र तप, दशरथ कीन्हें, आत्मभावरस, हियमँह लीन्हें।
जिनकल्पी ह्वै, आत्मविहारी, सर्व परिग्रह ममता टारी॥
सुत विछोह, जब मोह सतावै, तबही द्वादश भावन भावें।
परिवर्तन कर, जगमँह रांचे, कबहुँ बनें ना, हियमँह सांचे॥

दोहा—झूंठे नाते जगतमँह, यथा इन्द्रका जाल।
देखनमँह, सुन्दर दिखत, विनश जाय तत्काल॥
निर्मोही दशरथ हुये, धरि विशुद्ध परिणाम।
घन, चातक, जिमि रट लगी, कब पावें, शिवधाम॥

सर्वश्रेष्ठपद दशरथ धारा, ईर्यापथ से करें विहारा।
जीत परीषह बाइस सारी, चितमँह हो नित, आत्मविहारी॥
जा देशनमँह, चँवर ढुराये, राज अवस्थामँह, इत आये।
ता देशनमँह, पांव पियादे, चल ईर्यापथ, जिय अनिराधे॥

दोहा—मोह भाव ही जीवकें, हीन ऊंच दर्शाय।
या अरि के, द्रुत नशत ही, सब विभाव नश जाय॥
चिदानन्द चिद्रूप की, महिमा अगम, अपार।
जाने, माने, अनुभवे, करैं कर्म का छार॥

परिजन, पुरजन मिल सब संगै, किय अभिषेकहिं, धरें उमंगै।
भरत नृपति, अवधापुर वासी, याके चितमँह, रहैं उदासी॥
केकइ यासों गिरा उचारी, सुनहु भरत, अब बात हमारी।
राम लखण बिन, राज न सोहैं, शून्य जँचत नित, ना मन मोहैं॥

दोहा—माता, सबै बिसूरतीं, बेसब तजहिं पान।
लाव दुहुन लौटाय तुम, रहैं आय निज थान॥
धवल सुयश, तुम्र जगमगै, सूर्य चंद्र द्युति धार।
अतुल प्रेमरस, भ्रातृगण, विधु वारिधि उनहार॥

कमल पांखुरी सम, मृदु सीता, मृदुताईमँह, जगको जीता।
गृहमँह, उरजल, नांही हालो, चलो न जावे वासें चालो॥
भू कर्कश पर, पांवपियादे, चालै, कंटक पांव विराधे।
कष्ट मरणसम, ताहि सतावै, यों चिंतन कर, हियदुख पावे॥

दोहा—यातें अब तुम जाव द्रुत, राम लखण सिय, पास।
पांछे मैंभी आवँगी, लगी मिलन की आस॥
सुनत भरत प्रमुदित भयो, यों माताके वैन।
कहा, माय तुम कह भली, अमृतसम सुख दैन॥

धन्य धन्य बुध जननी तेरी, कही बात तुम मनकी मेरी।
योंकह तुरत सुभट सजवाये, तिन्हें संग ले शीघ्र सिधाये॥
बीच मार्गमँह पुरजन पाये, लौट राम ढिग से जे आये।
सबमिल पहुँचे सरिता तीरा, लखा तहां पै अगम्य नीरा॥

दोहा—सरित लखत ही भरत नृप, मनमँह करै विचार।
राम लखण सिय तरणि बिन, कैसे उतरे पार॥
पुन उत्सुक हो काष्टतें, बना सरितपै सेत।
सैन्य सहित द्रुत पार ह्वै, हृदय उमंगें लेत॥

लखे राम सिय सरवर तीरा, ढिगमँह बैठा लक्ष्मण वीरा।
आय राम ढिग शीश नवाया, मनमँह फूला नांहि समाया॥
कही भरत, सुन प्रभु अब मोरी, मैंने नृपपद प्रभुता छोरी।
तुमबिन क्षण भर रहो न जावै, नृपपद वैभव शून्य दिखावै॥

दोहा—पुर सूनो याविध दिखे, जिमि तन जिय बिन सून।
स्वर बिन सूनी रागिनी, पति बिन तिया बिहून॥
बिना नमक व्यंजन विरस, शशि बिन निशा विहीन।
सबही व्याकुल इमि भये, जल बिन बिलपत मीन॥

शोकाकुल है माय तिहारी, अतिही विलपै माय हमारी।
ताहि समयपै केकइ आई, विकल होय अति रुदन मचाई॥
राम लखण को हृदय लगाके, अमिय वयन बोली अकुलाके।
सब अपराध क्षमो सुत मोरे, मैं न रहूंगी अब बिन तोरे॥

दोहा—भासै नगर अरण्य सम, पुरद्युति हुइ अब क्षीन।
तुछबुध लख मोकों क्षमो, चूक घनी मैं कीन॥
नृपतुम अरु मंत्री लखण, भरत छत्र शोभाय।
शत्रूहन ढोरै चँवर, सिंहासन बैठाय॥

ठीक कहत हो, राम उचारी, पै सुन माता, विनय हमारी।
रघुवंशन की "आन" कहावै, प्रान जांय पै "वचन" न जावै॥
यातें तात "वचन" को पाला, मैंने "अनों वहां से टाला।
भरत हमारा भ्राता जानो, मोमें वामँह भेद न मानो॥

दोहा—तातागा को पालना, हम सब का कर्त्तव्य।
होय अनादर मैं रहूं, सुनहु भरत, हे भव्य॥
न्याय नीति संचाल कर, करहु राज, तुम भ्रात।
दे अशीष, तुम वृक्ष सम, फल, फूलो दिन रात॥

योंकह, अति संतोष धराया, केकइ, सुत, प्रतिबोध कराया।
पुन अभिषेक भरत का कीन्हा, दै संबोध विदा कर दीन्हा॥
भरत प्रतिज्ञा कीन्ही आके, मैंभी, दर्श रामका पाके।
शिवदायक द्रुत मुनिपद धारूं, भार राज का शीघ्र उतारूं॥

दोहा—भोगै राज, विराग चित, ह्वै अहनिशि मुनि भाव।
धर्मध्यान नित रत रहै, धर संयम से, चाव॥
एक दिवस भोजन समय, आये श्री मुनिराज।
विधिपूर्वक आहार दै, वंदे श्री ऋषिराज॥

पुन कह वृष स्वरूप समझावो, वृत पालन महिमा दरसावो।
विनत वचन सुन, कहि मुनिराया, गृहस्थ, मुनि का धर्म वताया॥
गृहस्थ, पंच अणुव्रत पालै, कर्म भार को क्रमशः टालै।
मुनिका धर्म महावृत धारै, कर्म अरी को, शीघ्र विदारै॥

दोहा—भेद प्रभेद वताय वहु, नृपभरतहिं संबोध।
सादर अणुवृत आदरे, किय विकार का रोध॥
विहरे मुनि, नृप चित विषें, हुवा गाढ़ वैराग।
जा हियमँह हीरा वसै, कहा, कांच से राग॥
निजस्वरूप श्रद्धा धरै, अरु ताही का ज्ञान।
"नायक" रमें स्वरूपमँह, पावै पद निरवान॥

* इति त्रयोदशमः परिच्छेदः समाप्तः *

अथ रामचन्द्र, लक्ष्मण कृत, वज्रकर्णोपकार वर्णन

वीरछन्द—

परम प्रमोद धरें पुरुषोत्तम, लखण राम सँग चाली सीय।
लखा मनोहर तापस आश्रम, चित्रकूट थल आदरणीय॥
राम लखण सिय, सुर देवीसम, लखकें तापस ढिगमँह आय।
भक्ति सहित पाहुनगति कीन्हीं, पल्लव शय्या दई बिछाय॥

दोहा—मधुर सुष्ठु फल फूल अरु, सामग्री बहु भांति।
लाय रखी सन्मुख सबै, जिहिं लखि हिय हो शांति॥
शांति सदन जनमन हरन, मनो स्वर्ग उनहार।
राम लखण सिय निरख इमि, अति प्रमोद चितधार॥

देखे धान्य यहां बिन बोये, कामधेनुसम गायें जोये।
तापस इनका रूप निहारें, तृप्ति न होय मोद मन धारें॥
कह तुम संग सबहिं मन लागे, हमहिं त्याग प्रभु जाव न आगे।
याविध सबमिल विन्ती कीन्ही, प्रेम अतिशयहि बताय दीन्हीं॥

दोहा—प्रेम मगन रोकें सबै, आगे आप न जांय।
महाविकट अति सघनबन, शेर रीछ दिखलांय॥
रुके न काहु भांति जब, चले दूर तक संग।
फेरे, बहुविध यत्न कर, शोक व्याप रहो अंग॥

महा सघन तम वनमँह छाया, जगत अंध आ यहां समाया।
गज, मृग यूथहिं केहरि घेरे, गर्जत गज मदमत्त घनेरे ॥
केहरि तरु त्वच नखन विदारें, कहूं विकट विषधर फुंकारें।
शैल सरित जल वेग लखाकें, राम लखण सिय चल हुलसाकें ॥

दोहा-निर्मल जल निर्झर लखत, कीन्हा इत विश्राम।
मिष्ट फलन को असन लह, पुन सब किय आराम ॥
पुण्योदय से मिलत सब, वनमँह मंगल जोय।
सानुज राघव सीय सँग, निर्भय विचरन होय ॥

इमि चल मालवदेशहिं आये, मास चार अरु अर्द्ध बिताये।
देश ग्राम पुर पट्टन सोहै, धन धान्यादिक लख मनमोहै ॥
देखी ऊजड़ बस्ती सारी, लख न परे तँह नर अरु नारी।
प्रेतभूमिसम भयप्रद भासै, समझ न आवै यों ह्वै कासै ॥

दोहा-जिन दीक्षा धारी यदपि, हो संयम से हीन।
फीका लागै तबहि जिमि, व्यंजन लवण विहीन ॥
ऊजड़ सब बस्ती पड़ी, कहूं न कोय दिखाय।
हुये चकित यों देखकें, लक्ष्मण, सिय रघुराय ॥

रत्नकम्बल, सुन्दर सोहै, तापै आसन, राघव मोहै।
ढिगमँह बैठी सीता नारी, तब लक्ष्मण से राम उचारी ॥
वट चढ़ देखो, बस्ती दीसै, या कोऊ, नर, आय कहीं से।
आज्ञा पाके, वट चढ़ देखा, जिनमन्दिर लख,अति सुख लेखा।

दोहा-स्वर्गोपम नगरी रुचिर, दिख सम्पतितें पूर ।
किन्तु मनुज का, नाम नहिं, दिखै न कायर शूर ॥
आय कहा, श्रीरामसे, सुनहु नाथ, मम बात ।
भागे पुरजन, भय विवश, हुआ, अवश उत्पात ॥

भिक्षुक, दृष्टि परै मग मांही, पुण्यहीन जाको सुख नांही ।
चपल नेत्र, तनु मलिन शरीरा, जीर्ण वस्त्र, श्रम बिन्दू नीरा ॥
रजआच्छादित केश रुखाये, अशुभ कुफल साक्षात दिखाये ।
यों लक्ष्मणने वृत्त बताया, सुन राघव, चित विस्मय आया ॥

दोहा-कहि राघव, यों लखण सों, ताहि बुला, द्रुत लाव ।
आज्ञा पा, लक्ष्मण गये, वह लख, अति भय खाव ॥
देव, खगेन्द्र, नरेन्द्र ये, आय रहो मम पास ।
काविध गति मेरी करें, अब ना, जीवन आस ॥

यो चिंतत ही, मूर्छा खाई, तनकी सुधबुध सब बिसराई ।
लक्ष्मण, याके समीप आके, किय सचेत, मृदु वचन सुनाके ॥
कहा, धीर धर, मत भयखावो, भ्रात निकट चल भेद, बतावो ।
सादर लक्ष्मण, ताको लाये, राम निकट आ, शीस नवाये ॥

दोहा-निरख राम की छवि रुचिर, प्रातः मंगल मूल ।
विकसा, वारिज वदन इस, गया पथिक दुख भूल ॥
उठी मरन की भ्रांति नश, हृदय मांझ, सुख साज ।
शीस नाय बोला वचन, हुकम करो महराज ॥

तब राघव मृदु गिरा उचारी, तिष्ठ, तिष्ठ, मत भय खा भारी।
को तुम, कहहु, कहां तें आये, आनन छवि, किमि छीन दिखाये॥
राम अमिय वच, सुन हरषाया, सबविध, यानें वृत्त सुनाया।
हूं किसान शिवगुप्ता नामा, इततें, दूर बसत मम ग्रामा॥

दोहा—जाविध नगर उजाड़ है, सुनहु कथा मन लाय।
उज्जैनी नगरी नृपति, सिंहोदर महराय॥
वज्रकर्ण नामा नृपति, पुरदशाङ्ग का स्वामि।
सिंहोदर स्वामी प्रती, नित प्रति जाय नमामि॥

वज्रकर्ण, शुभ अवसर पाकें, श्री मुनि दर्श, किये हरषाकें।
सादर किय धर्मामृत पाना, जन्म सफल तब अपना माना॥
विनया मुनिसों, कछुवृत पावूं, देव शास्त्र गुरु, शीस झुकावूं।
इनबिन अन्य, धोक ना देहों, चाहे, जो कछु, मैं दुख सेहों॥

दोहा—मुनि समक्ष, वृत आदरे, कौन, निवारनहार।
प्रान जांय, चाहै भले, तजूं न वृत सुखकार॥
सुना न यह संवाद क्या, मुझसे पूंछत आप।
विनत वदन यांचक तबै, याविध वच आलाप॥

लखण प्रश्न पुन कीन्हा यासे, दृढ़ वृत, वज्रकर्ण किय कासे।
याका सब विस्तार बतावो, मेरा संशय शीघ्र मिटावो॥
सुना पथिक पुन, कह विस्तारा, वज्रकर्ण मृगया करतारा।
भोगी महा विषय विष सेवै, एक समय, मुनिको लख लेवै॥

दोहा-आतापी योगी विमल, रवि सम दीप्ति महान।
आसन शिला सुहावनी, निर्भय सिंह समान॥
अचलपणा है मेरु सम, सागर सम गहराइ।
विहँसत बोला, मुनि प्रती, वज्रकर्ण नरराइ॥

कहा करत, इत बैठ अकेले, जासों, परसों, होत न भेले।
सुनत वचनयों, मुनी उचारी, दुख मेंटें, सुख लेनें भारी॥
सुख अनादि से, ना हम लीन्हा, सो सुख प्राप्त, आज हम कीन्हा।
वज्रकर्ण सुन, पुनः उचारा, काह कहत वच, संशयकारा॥

दोहा-वस्त्र रहित तन, नग्न तुम, कछु न तिहारे पास।
देह दशा विगरी सकल, बैठे. धर सुख आस॥
जो सुख तुम साधत फिरत, सो सुख, कछु न दिखाय।
बैठे, आंखें मींच निज, केवल ढोंग रचाय॥

वस्त्राभूपण, अंग न कोई, सुख सामग्री, सबही खोई।
विषयाशक्तो, मुनि ने जाना, निशिदिन, पाप करत मनमाना॥
यातें ऐसा, वचन उचारे, हित उपदेशें, भाव सुधारे।
यों विचारमुनि, इसे उचारा, सुनहु नृपति, उपदेश हमारा॥

दोहा-सुनें न तुमनें नर्क दुख, पाप करत तँह जाय।
ताका वर्णन करत ही, कोटक वरस बिताय॥
तऊ न वर्णन हो सके, सहे. नरक के मांहि।
शीत उष्ण के दुख सहे, कहवे समरथ नांहि॥

मेरु समान लोह गल जावै, ऐसा शीत उष्ण दुख पावै।
त्रतिय नर्क तक असुर कुमारा, जा क्षुभ्कांय दुख देंय अपारा ॥
यों सप्तम तक आपस मांही, छेदें, भेदें क्षण सुख नांही।
विषय कषाय जीव जो सेवें, वेही याविध दुखको लेवें ॥

दोहा—असह दुःख परवश सहै, तँह ना शरण सहाय।
स्ववश सहे जो अंश हू, भवसागर तर जाय ॥
यातें वृष श्रद्धा धरहु, भोगो सुःख अतीव।
देव शास्त्र गुरु भक्ति से, भोगै सुख यह जीव ॥

मुनिवृतमँह लखि दुधरताई, ताकें श्रावक वृत्ति बताई।
सम्यक श्रद्धा ज्ञान उपावै, देव शास्त्र गुरु भक्ति लहावै ॥
हिंसा चोरी झूंठ कुशीला, परिगृह जाकी फैली लीला।
इन पापन का किंचित त्यागा, श्रावक जाके निज रुचि जागी ॥

दोहा—उपदेशामृत पान कर, अश्व त्याग भुवि आय।
सादर वन्दे मुनि चरण, वज्रकर्ण नरराय ॥
कहै प्रभो, धन भाग्य मम, दर्श आपके कीन्ह।
कौतुकवश मैं प्रश्न किय, धर्मरत्न गह लीन ॥

महा रंक कर, नवनिधि आई, धर्म निधी तिम, मैं हू पाई।
मुनिवृत धारन समरथ नांही, गहूं गृहीवृत रुचि मनमांही ॥
देव शास्त्र गुरु नमूं सदा मैं, अन्य न देऊं धोक कदा मैं।
दास जान अनुकम्पा कीजे, श्रावकके वृत गुरुवर दीजे ॥

दोहा—श्री मुनि से उपदेश सुन, वज्रकर्ण लह बोध ।
श्रद्धा ज्ञान चरित्रमँह, हो सम्यक प्रतिशोध ॥
पुन विकल्प मनमँह उठा, सिंहोदर मम स्वामि ।
कर आपति, दे विपति बहु, यदि ना ताहि नमामि ॥

यद्यपि हूं निज पुरका राजा, वह है बहुनृपतिन महराजा ।
मैं पुन कैसे नमूं न वाको, प्रगट होय ना या अब ताको ॥
बिम्ब मुद्रिकामँह पधराव्रं, ताढ़िग याको शीश झुकाव्रं ।
चिन्त्य ताहि विधकर हुलसाके, नमें बाहिविध ताढ़िग जाके ॥

दोहा—समय पाय इक चुगल ने, चुगली नृप से कीन्ह ।
वज्रकर्ण, तुमको नृपति, झूंठी धोकहि दीन्ह ॥
नमें, बाहु निज मुद्रिका, जामँह प्रभु पधराय ।
सिंहोदर से चुगल यों, चुगली कीन्ही आय ॥

सुन सिंहोदर चिन्ता लेवै, सेवक मम है धोक न देवै ।
लेहुँ परीक्षा इत बुलवाव्रं, सत्य, होय शूली चढ़वाव्रं ॥
रिसधर भेजा तँह हलकारा, वज्रकर्ण से जाय उचारा ।
बुलाय स्वामी वेग पधारो, इते विलम्ब न रंच विचारो ॥
दोहा—सुन यों वाँको किय विदा, चलन भये तैयार ।
ताहि समय इक भल पुरुष, आया याके द्वार ॥
करमँह शोभित दंड इक, सुठि आकृति शुचिगात ।
आय नमा पुन यों कहा, सुनहु मित्र मम बात ॥

कोप्या तोपै स्वामी तेरा, अनहित करहै तोहि घनेरा।
कोय वाहि से चुगली खाई, धोक न देवै तुमको राई।
बिम्बमुद्रिकहि शीश झुकावै, यों सुन वाका हिय रिसयावै।
तोपै भेजो दूत हलकारो, आय कहा उत वेग पधारो॥

दोहा—अब तुम वाढिग पहुँचहो, जबरहिं तुम्हें नमाय।
ना नम हो यदि वा प्रती, शूली देय चढ़ाय॥
वज्रकर्णने यों सुना, ह्वै शंकित मन मांहि।
हित या अनहित की कहै, समझ परै कछु नांहि॥

मालुम पड़त कोय है भेदी, यातें मुझे समस्या देदी।
यों विचार एकान्त बिठाकें, कहा, कहो कस जानी याकें॥
कहा नाम, कँह सदन तिहारे, प्रतीति आवै हिये हमारे।
सुनयों वह याविधै उचारा, ल्यो परिचय या भांति हमारा॥

दोहा—पिता सेठ संगम जनहु, यमुना मेरी माय।
विद्युदंग मम नाम शुभ, कुन्दन नगर सुहाय॥
एक समय मो चित विषें, उठी उमंग अपार।
उज्जयनी नगरी विषें, जाय करूं व्यापार॥

तहां जाय इक वेश्या देखी, वाढ़ी प्रीति प्राणसम लेखी।
तासें मैंने संगम कीन्हा, तानें मेरा धन हर लीन्हा।
प्रीतिपाशफँस सुमति गमाई, छह महिना तक सुध ना आई॥
वानें कुण्डल महिपै डारे, कही रुचें ना, फेंक उतारे।

दोहा–रानी श्रवणन जगमगें, वें पहरूं ये त्याज ।
ल्यावहु यदि हिय प्रेम तो, करूं परीक्षा आज ॥
चन्द्र सूर्य सम दिपत वे, अनुपम रुचिर जड़ाव ।
ता सिवाय पहिरों नहीं, कोटिक करो उपाव ॥

सुन, चित असमंजसता धारी, पुन ल्यावन मन मांहि विचारी ।
राजमहलके पहुँच पिछेरी, प्रविशा महिलन रैन अंधेरी ॥
शयनागार पहुँच सुख लेखा, नृपति टहलते तँहपै देखा ।
रानी कहि, क्यों नींद न आवै, कौन व्यथा तुम हियो दुखावै ॥

दोहा–सिंहोदर, यासों कही, सुनहु प्रिये, मम बात ।
वज्रकर्ण उद्दंड अति, नमैं न, मो ढिग आत ॥
धन वैभव सुख मैं दियो, ताहि बनायो राय ।
श्रीजिनको वंदन करै, मुँदरीमँह पधराय ॥

लेहुँ परीक्षा, वाहि बुलावूं, ना नमहि, शूली चढ़वावूं ।
ल्यूं बदला, कैसा अभिमानी, याह व्यथा मम हिये समानी ॥
अन्य भांति संतोष न आवे, दाह अनादर, हियो जलावे ।
इतनन, निद्रा आवे नांही, ऐसा, कहा शास्त्र के मांही ॥

दोहा–कुटुम्ब निर्धन, अरि सबल, वैरागी हिय मांहि ।
होय अनादर बड़न, तो, निद्रा आवै नांहि ॥
यों निश्चय, मैंने कियो, रानी सों, कहि राव ।
भयो भग्न, मेरो हृदय, लगो वज्र सम घाव ॥

कुन्डल लेवन की बुध भागी, तो हित करन, बुद्धि मम जागी।
साधर्मी लख, हिय हुलसाया, वेग ढिगै आ, वृत्त सुनाया॥
अब दल सत्वर, तो ढिग आवै, प्रान लिये विन, चैन न पावै।
देखो, वे सामन्त दिखावें, अति तेजी से, इतपै आवें॥

दोहा—वज्रजंघ देखा जबै, सचमुच सैन्य दिखाय।
सेनाकेपद दलनतें, रही धूल, नभ छाय॥
परमहितू याको समझ, लगा, हिये से लीन्ह।
बैठ निशंकित, गढ़ विषें, द्वार बन्द कर दीन्ह॥

बन्द कपाट सैन्य ने देखा, प्रवेश करन गम्य ना लेखा।
निज प्रभु ढिग, द्रुत खबर पठाई, सुनत खबर नृप को रिस छाई॥
सारी सैन्य लाय, पुर घेरा, कठिन लैन गढ़ चितमँह हेरा।
वज्रकर्णढिग, दूत पठाया, आय निकट, संदेश सुनाया॥

दोहा—स्वामी ने, तुमसे कहा, सुनहु चित्त से राय।
हमने सब वैभव दिया, हम ही पै इतराय॥
जिनशासन का गर्व कर, अपने मनमँह फूल।
मेरा हिय कंटक बना, करत कार्य प्रतिकूल॥

घर खोवा, वे यती कहावें, जग जीवन को, वे भरमावें।
भरम मांहि अब, तूं भी लागा, धनी होय, अब बनत अभागा॥
मैंने दिय, धन वैभव सारा, दिया नृपति पद, देश हमारा।
आय ढिगै मम, शीस न नावै, उल्टा, पर को माथ झुकावै॥

दोहा—न्याय दृष्टि को त्याग पुन, करत पूर्ण अन्याय।
यातें आवो वेग तुम, स्वामिचरण शिरनाय॥
यदि ना मानो होय गति, जल विन तड़फै मीन।
शूली तुम्है चढ़ाय पुन, देश, कोप ज्यूं छीन॥

अब विलम्ब ना यामें जानो, द्वै असि ना रह, एक मियानो।
याविध दूत, गर्ज के बोला, मानो गिरा, तोप का गोला॥
वज्रकर्णसुन ताहि उचारा, जाय सुनावहु, स्वामि हमारा।
मृदु वच कह, नीके समझाया, सादर, यँहतैं, दूत पठाया॥

दोहा-आय दूत, प्रभु ढिग कहै, वज्रकर्ण संदेश।
कहा, स्वामि से यों कहो, लेव आपना देश॥
गय, हय, गो, धन कन सभी, लेव आप भन्डार।
तीय सहित, पुर मैं तजूं, हर्ष, हियेमँह धार॥

किन्तु प्रतिज्ञा गही न त्यागूं, याकी भिक्षा, तुमसे मागूं।
सबके स्वामी आप कहाये, स्वात्म स्वामिपन हमहू पाये॥
देव शास्त्र गुरु प्रति शिर नाव्रं, अटलप्रतिज्ञा गही निभाव्रं।
चन्द्र सूर्य की द्युति टल जावै, मेरी "आन" टलन ना पावै॥

दोहा—दूत वचन सुन, ह्वै रुपित, सिंहोदर मनु सिंह।
नयन अरुण, भृकुटी चढ़ी, चूर्ण करन अरि वृंद॥
सुभटन को आज्ञा दई, देवो देश उजार।
नष्ट करो सौभाग्य सुख, पावै दुःख अपार॥

याविध पथिक राम से बोला, ऊजड़ किय, सब पुर अनमोला ।
मेरा ग्राम भस्म उन कीन्हा, स्वर्गनसम, मसान कर दीन्हा ॥
हुती झोपड़ी मेरी नामी, जरकर राख हुई, हे स्वामी ।
निजहियका दुख अपनइ जानें, नांहि विराना ताहि पिछानें ॥

दोहा-बचा कछू ना ढिग विर्षे, तीय मुझे समुझाव ।
पड़ा हुवा जो कछु मिलै, जाय वहां से लाव ॥
धन्य भाग्य मेरा हुता, चल आया इस ओर ।
मिले दर्श प्रभु आपके, पूर्व पुण्य के जोर ॥

दीन वयन सुन राम विचारी, पाप उदय दुख देवै भारी ।
उपजी अमित व्यथा हिय मांही, दे दिय हार, विलम किय नांही ॥
रत्न अमोलक हारहिं पाके, दइ अशीष, पंथी शिर नाके ।
राजऋद्धि, प्रभु मोकों दीन्ही, ताहि देत मँह, देर न कीन्ही ॥

दोहा-पुरुषोत्तम तुव मिलन सो, महतपुण्य से होत ।
विपति नशत सम्पति बढ़त, नितनव विभव उदोत ॥
योंकह पंथी गमन किय, जय जय शब्द उचार ।
ताहि समय राघव मुदित, लछमण से उच्चार ॥

सूर्य तपा अब चलें यहां से, यों कह चाले वेग वहां से ।
मिला जिनालय दर्शन कीन्हें, प्रभुदे थुति किय अतिसुख लीन्हें॥
हर्षित होकें बाहर आये, असन खोज हित लखन पठाये ।
आज्ञा पाय लखण द्रुत चाले, सिंहोदर की ओर उताले ॥

दोहा–पहुँचे ताके कटकमँह, लखण वीर हरषाय।
मार्ग रोक इक सुभट द्रुत, इनको कुवच उचाय॥
सुनें कुवच लच्मण जबै, द्रुत तज पैसन द्वार।
हीन मुँह में का लगों, मनमँह कीन्ह विचार॥

लच्मण पहुँचे पुन गढ़तीरा, वज्रकर्ण लख है कोउ वीरा।
हर्षित ह्वै निज उरै बुलाके, स्वागत कीन्हा अति थुति गाके॥
कहो आप, कँह से, इत आये, करूं पूर्ति जो हियमँह चाये।
विहँस मञ्जु वच, लखण उचारा, असन पान हित, टोह हमारा॥

दोहा–वज्रकर्ण विनया तबै, है भोजन तैयार।
गृह पवित्र मम कीजिये, विनवों बारम्बार॥
श्रवत लखण, यासें कहा, प्रभु बिन, असन न खांय।
ठहरे वे, जिनभवनमँह, सामग्री ले जांय॥

सुनतइ वज्रकर्ण मुद लीन्हें, द्रुत सामग्री भिजाय दीन्हें।
दूध दधी घृत, व्यंजन नाना, सेवक हाथ, भिजाए अमाना॥
मुदित लखण, निज थानक आये, कीन्ह रसोई, वेग जिमाये।
अमिय असन लख, मुदित अपारा, राम, लखण से, वयन उचारा॥

दोहा–वज्रकर्ण धर्मात्मा, सिंहोदर है दुष्ट।
मानी, गर्जत, बहुबली, तसु सेना है पुष्ट॥
हम तुम होते, दुख सहैं, वज्रकर्ण धर्मात्म।
माता कूंख लजांय हम, अरु धिक पद वीरात्म॥

वाने व्यंजन, मिष्ट पठाये, मनो जिमाय, जँवाई आये।
ग्रीष्म खेद, आताप मिटाया, मनु पियूष रस पान कराया ॥
पंथी ज्यों वृत्तान्त वताये, सर्व सत्य ता भांति लखाये।
वज्रकर्ण "है" दृढ़ श्रद्धानी, तास वानगी क्षणमँह जानी ॥

दोहा—यातें जावो वेग तुम, मेंटो सब उत्पात।
समझावूं तुमको कहा, कीजो याविध भ्रात ॥
राघव ने तब लखण की, अतिहि-प्रशंसा कीन्ह।
प्रबल पराक्रम सिंह सम, तेज सूर्य सम लीन्ह ॥

श्रवत प्रशंसा श्रवभुन मांही, अधो दृष्टि किय, ऊरध नांही।
प्रमुदा पुन यों वयन उचारा, अहो नाथ, तुम्र आशिष धारा ॥
काह कठिन, जो ना कर लावूं. किन्तु तुम्हारी आज्ञा पावूं।
योंकह द्रुत चल, कटक जहां पै, भृत्य कहा, किमि आय यहां पै ॥

दोहा—कहा दूत हूं भरत का, आय नृपहिं दरबार।
योंकह पहुँचा नृपति ढ़िग, कहै वचन ललकार ॥
भरतरायका, दूत हूं, सुन सिंहोदर राय।
मानों तुम आदेश, तब, कुशल तिहारी आय ॥

रार न ठानो आपस मांही, अन्य भांति, अब निवटै नांही।
वज्रकर्णसे, करहु मिताई, याही में तुम्र होय भलाई ॥
सुन सिंहोदर विहँस उचारा, मैं स्वामी, वह भृत्य हमारा।
यदि वह अविनय प्रभु की ठाने, तदि मनाय लें, जैसे माने ॥

दोहा–यामें नांहि विरोध कछु, वज्रकर्ण मति हीन।
मायाचारी कृतघ्नी, चूक चाकरी कीन॥
तदि समझो, जैसो करो, मेरो सेवक आय।
तुम बोलत क्यों बीच में, कहा प्रयोजन पाय॥

योंसुन, लखण गर्ज के बोला, मानो गिरा तोप का गोला।
भृत्य जान, अपराध विसारो, सेवक ही कहलाय तिहारो॥
सुन सिंहोदर, अति रिसयाया, बोला दुर्वच जो मन भाया।
वज्रकर्ण तो, हैही मानी, तुम्हहु वानगी ता सम जानी॥

दोहा–पाथरसम, तुअ हिय दिखत, तुझे न रंच विवेक।
भरत कहां, तोसम बसें, लखी वानगी एक॥
हांडी का परिचय मिलत, चांवल एक टटोल।
ना नरमाई रंच हू, हियसालत, तुअ बोल॥

बसें भरत, पुर सबहि कुबुद्धी, तोसम, जैसा तूं दुरबुद्धी।
परजा जैसी, तैसा राजा, बिना बुलाये, तूं इत आता॥
श्रवणत लक्ष्मण पुनहु उचारा, सुन सिंहोदर, हुकम हमारा।
नमन करन ना भरत भिजाया, केवल, संधि करावन आया॥

दोहा–सुबुध हृदयमँह लाव तुम, काहे, प्राण गमाव।
मानो, तो अब ठीक है, नातर शीघ्र बताव॥
यों सुन, छोभे सकल जन, कहें, पकड़ द्रुत लेव।
जान न पावे काहुविध, सजा किये की देव॥

कलकलाट अति मँचा तहां पै, लैं कृपान, भड़रांय वहां पै।
चारों उर से, डारो घेरा, स्यालन सें जिमि घिरा वघेरा ॥
मेरु उड़ावन, वयार चाहै, सिन्धु मथन जिमि मिल उमगाहै।
याविध लक्ष्मण, एक अकेले, यापै आये, सब हो भेले ॥

दोहा–लक्ष्मण को सब जननने, याविध घेरो आय।
जिमि टीड़ी दल मेरु के, रहै चतुर्दिश छाय ॥
लक्ष्मण पाद प्रहार तें, ह्वै घायल, बहु शूर।
जादिश को ये बढ़ चलै, करदे चकनाचूर ॥

लक्ष्मण के सन्मुख ता ठांही, अक्षत शूर बचा कोइ नांही।
बहुतक गर्दि, मर्दि महि डारे, गय, हय बहुतक सुभट सँहारे ॥
पुनसामन्त साम्हने आये, हाथी घोड़े लाय अड़ाये।
पै लक्ष्मण हिय, ना अकुलावै, विहँस विहँस पुन मार मँचावै ॥

दोहा–लक्ष्मण के चारों तरफ, सिंहोदर की सैन।
केशरि सम निर्भय खड़े, नहिं वैरिन मन चैन ॥
जा उर धावै रुपित हो, मानो यमही आय।
क्षणक मांहि ता भूमि पै, रुंड मुंड दिखलाय ॥

गजरथ चढ़ सिंहोदर आया, गजका थंभ लखण हथियाया।
जिमि दावाग्नि सघन वन दाहै, त्यों ये मारै, जँह मन चाहै ॥
वज्रकर्ण गढ़ पर से देखा, धन्य भाग्य अपना तब लेखा।
एक शूर सबहिन को मारै, ज्यों केहरि, गज युथ्थ पछारै ॥

दोहा-सिंहोदरके सैन्यजन, ऐसे, भागे जाय।
ज्यों दिनकर के उदय पे, तिमिर न ठहरन पाय॥
यह कोऊ सुर आयकें, मम सहाय कर दीन्ह।
वज्रकर्णने चित विषें, याविध थिरता कीन्ह॥

अब सिंहोदर, आय अगाड़, लखण सिंह सम, तबहि दहाड़े।
पकड़ बांध ताको छण मांही, यामँह देर लगी है नांही॥
केहरि सन्मुख जिमि आ जावे, मृग की रंच चलन ना पावे।
लख विक्रम, मन मांहि विचारी, ये आया महनर, बलधारी॥

दोहा-बंधन मांही पति हुआ, सुन रानी तँह आय।
कुटुम सहित व्याकुल सबै, अतिशय रुदन मँचाय॥
लक्ष्मण के पांयन लगो, कहि, पति भिक्षा देव।
सेवक बनकर आपकी, कर हैं, निशिदिन सेव॥

विहँसत लक्ष्मण बोले ताको, बट तरु पर लटकाहों याको।
हाथ जोड़ रानी शिर नाई, मारो मोकों, यदि रिप छाई॥
तिय को पति का, एक सहारो, ताहि छांड़ क्यों प्रान हमारो।
याविधकह, अति रुदन मँचाई, तब लक्ष्मण ने धीर बँधाई॥

दोहा-विहँस बदन बोले लखण, हियमँह धीरज लाय।
करों मुक्त बन्धन इसे, जिन चैत्यालय जाय॥
योंकह गवने तुरत ही, राघव के ढिग आय।
लख बन्दी सिंहोदरहि, हिय हरषे रघुराय॥

सिंहोदर ने शीश झुकाई, हाथ जोड़कर बहु थुति गाई।
हूं सेवक, तुम नाथ हमारे, द्यो आज्ञा करूँ काज तिहारे॥
दरशन पाय सकल दुख भूला, रविकर परस कमल जिमि फूला।
प्रबल पराक्रम तेज निहारा, प्रगटै रवि जिम तिमिर विदारा॥

दोहा—पुरुषोत्तम अवनीपती, सुष्ठुन आदर देत।
दुष्टन दंडविधान कर, करत जगत का हेत॥
राज काज चाहों नहीं, मन चाहै तिहिं देव।
अब अभिलाषा है यही, करूं आपकी सेव॥

तभी विनय युत बोली रानी, पति भिक्षो, हे प्रभुवर ज्ञानी।
फूलै फलै सुहाग हमारो, ऐसी दया हियेमँह धारो॥
पुन सीता के चरणन लागी, पति की भिखा यासे मांगी।
हे गुणभूषण भिक्षा देवो, ऐतो यश, हे बहिनी लेवो॥

दोहा—तब राघव ने गर्ज कर, सिंहोदर से बोल।
वज्रकर्ण की सेव कर, मत कर टालमटोल॥
कुशल तिहारी याहि विध, अन्य भांति ना होय।
प्रेम परस्पर यों करहु, ज्यों विधु वारिध जोय॥

वज्रकर्ण प्रमुदित इत आया, श्रीजिन दर्शे बहुथुति गाया।
हे प्रभु, दीनानाथ कहायो, दीन जान प्रभु पार लगायो॥
तोसम हितकर और न दूजा, अब तक मोकों नाहीं सूझा।
देव शास्त्र गुरु श्रद्धा जोरी, पार करो अब नैया मोरी॥

दोहा-दर्श पूज थुति कर निकस, राम ढिंग द्रुत आय।
प्रमुदित हिय राघव मिले, लीन्हा गले लगाय॥
तोय धर्म श्रद्धा घनी, नमा न मोकों देख।
तोय देख हिय उमड़ जिमि, विधु वारिध उल्लेख॥

वज्रजंघ हू विहँस उचारे, धन्य भाग्य जो आप पधारे।
मात पिता तुअ धन्य कहाये, ऐसे वीर जिन्होंने जाये॥
धर्म सहायक पदवी धारी, मेंटी सारी व्यथा हमारी।
का उपमा दे तुम यश गाये, सुरतरु चिंतामणि हम पाये॥

दोहा-सूर्य चन्द्र फीके लगें, आप द्युती अधिकाय।
गुण उतंग त्यों मेरु नहिं, रही कीर्ति जग छाय॥
अचल पराक्रम आपमँह, शैल न हो या भांति।
शशि से है अधिकी सुधा, हिय को मिल विश्रांति॥

विद्युदंग भी इत पै आके, राम लखण को शीश नवाके।
बैठा प्रमुदित यश को गाया, वज्रकर्णका वृत्त सुनाया॥
धर्म प्रतिज्ञा यो ना धारे, किमि सिंहोदर भाव विगारे।
मैं कुभाव धर नृपगृह आया, वृत्त जान धर्मात्म बचाया॥

दोहा-सकल सभाजन याहि की, करी प्रशंसा भूर।
किरपा विद्युद्दंग की, भये विघ्न सब दूर॥
यो ना करै सचेत तो, ना मालुम का होत।
यातें सारे जगतमँह, महिमा धर्म उदोत॥

राघव पुन यों वयन उचारे, वज्रकर्ण, धन भाग्य तिहारे।
श्रद्धा अटल धर्म की कीन्ही, तानें बाधा मिटाय दीन्ही॥
वज्रकर्ण कहि, विनय उचारों, सब जिय पर, मैं करुणा धारों।
अरि, मितु सब पै समता भावूं, स्वप्न मांहि ना दुख पहुँचावूं॥

दोहा—सिंहोदर, तव स्वामि मम, प्रथम छांड़ ता देव।
फिर पांछे कुछ और हो, विनय मान मम लेव॥
मैं ना चाहूं स्वामि को, स्वप्न मँह दुख होय।
सब समरथ हो, तुम प्रभू, वरणि सकै ना कोय॥

वज्रकर्णवच समता वारे, सुन सब मिल, जय शब्द उचारे।
परम पुनीत हृदय है याको, अरी मित्र है, इकसम जाको॥
सज्जन, लक्षण, याहि कहाये, परहित को नित, हिय उमगाये।
दुर्जन प्रति भी कर उपकारै, सज्जन लक्षण, विश्व पुकारै॥

दोहा—सिंहोदर का कर पकड़, वज्रकर्ण के साथ।
आपस भेंट कराय तब, श्री राघव, नरनाथ॥
भये परस्पर मित्र दोउ, अर्ध, अर्ध दे राज।
घट, बढ़ ना कोई रहे, दोउ भये सम्राट॥

विद्युदंग बनाय सैनानी, वज्रकर्ण कृतज्ञता मानी।
बहु धन सम्पति ताको दीन्हा, पूर्ण निहाल ताहि को कीन्हा॥
वज्रकर्ण की आठहु कन्या, यौवनवतीं रूप लावण्या।
सिंहोदर की युवती सारी, त्रय शत कन्या परम दुलारी॥

दोहा—लक्ष्मण से कीन्हें विनय, ये दोऊ सम्राट।
करहु ग्रहण, कन्यान को, उत्सव रचें विराट॥
सुन लक्ष्मण बोले तबै, अबै न अवसर आय।
कहुँ शुभ धाम बनाय पुन, परिणय साज सजाय॥

रामहु पुष्टी कर गंभीरा, जांय उदधि के दक्षिण तीरा।
तँहपै, निज आवास बनावें, लेवें जननी को, तब आवें॥
पुन परणें, सन्तोष धराया, ब्याह उचित ना, अभी कहाया।
तात, अनुज लघु को पद दीन्हा, 'वचन' निवाहन,हम गह लीन्हा॥

दोहा—ब्याह हेतु आई यहां, ते सुन अजुगत बात।
हुआ विरस आननयथा, सुमनकंज हिमपात॥
सोचें, इनहीं को वरें, नहिं तो तजहैं प्रान।
यों निश्चय कर मगन हीं, गही धर्म की आन॥

सिंहोदर ने, दुविधा त्यागी, वज्रकर्ण प्रति, प्रीती जागी।
भई परस्पर, अतिही गाढ़ी, नित ही नूतन, दिन प्रति बाढ़ी॥
विद्युदंग, निज कुटम बुलाके, रहा यहां पे, अति सुख पाके।
सुख का बीज, सुखद फल भोगा, कल्पवृक्षसम, मिलु शुभ योगा॥

दोहा—विगतअर्धनिशि,गमनकिय, राम लखण सिय संग।
विचरें निर्भय सिंहसम, उमगत हृदय उमंग॥
प्रात सबेही गमन लख, रहे, शोकमेंह छाय।
रट चातक जिमि मेह को, तिमि पुन मिल ललचाय॥

आये पुण्य प्रतापतें, वज्रकर्ण के धाम।
"नायक" धर्म प्रभाव किय, पुरुषोत्तम श्रीराम॥

इति चतुर्दशः परिच्छेदः समाप्तः।

अथ मलेच्छाधिपति रौद्रभूति से, श्री रामचन्द्र, लक्ष्मण द्वारा, बालखिल्य के मुक्त होने का वर्णन

—वीर छंद—

श्री रघुवीर लखण भ्राता युत, चाले जनकनंदिनी संग।
लें विश्राम सुहावन कानन, मन भावन हिय धरें उमंग॥
नलकूंवर के पुरमँह पहुँचे, अति उतंग, जिन भवन लखाय।
अनुपम, सुरपुरसम पुर दीसै, याविध शोभा कहिय न जाय॥

दोहा—सलिल लैन लक्ष्मण गये, सुभग सरोवर तीर।
केलि करत नृप कुँवर तँह, दीपै दिव्य शरीर॥
वह, लक्ष्मण को लखत ही, चितमँह मोहित होय।
द्रुत लक्ष्मण के लैन को, भृत्य भिजायो कोय॥

कल्याणमाल नाम कहाया, है कन्या, नर भेष बनाया।
याके ढिग, जब लक्ष्मण आये, स्वागत कर मृदु वचन उचाये॥
हुआ कहां तें, आगम स्वामी, सुन्दर, सुभग, सुलक्षण नामी।
लक्ष्मण विहँस कहें मृदु बैना, बात करन को, अवसर है ना॥

दोहा–बन्धु कार्य प्रथमहिं करूं, जो मम प्रिय श्रद्धेय।
भोजनविधी जुटाय पुन, आऊं आज्ञा लेय॥
सुनत कुँवर मृदु वच कहे, विनवों द्वय कर जोर।
असन पान होवे यहीं, विनती मानहु मोर॥

विनवत लख, लक्ष्मण ने मानी, भ्रात ढिगं भेजा चरज्ञानी।
जाके राम सिया को लायो, सिंहासनपर तिन्हें बिठायो॥
अर्घ देय आरति कर लीन्हो, मिष्ट वचन कह, स्वागत कीन्हो।
द्रुत व्यंजन तैयार कराये, सादर सबको, बैठ जिमाये॥

दोहा–सानँद भोजन कर सबहि, बैठे प्रीति जनाय।
तबहिं कुँवर ने वेग पुन, लिय एकान्त कराय॥
चौकी राखी मेल्ह कर, बैठे तँह सामंत।
आन न पावे कोउ जन, केतक होय महंत॥

बदला भेष, नारि बन आया, देख सबन मन अचरज पाया।
सुरी सुन्दरी रूप सुहाई, पयनिधि तज या लक्ष्मी आई॥
या श्री ही या रंभा आके, दिखाय कौतुक, रूप बनाके।
कछु भी भेद समझ ना आया, मनो स्वप्न या सन्मुख पाया॥

दोहा–रतन ज्योतिसम देह द्युति, रहि दशदिशि छिटकाय।
अइ सिय के पांयन लगी, सिय लिय, गोद बिठाय॥
निरख लखण अति सुन्दरी, विधे काम के बान।
ह्वै थिर, दोनों चपल चखु, उपजा क्षोभ महान॥

राघव यों लख, याहि उचारो, काहे भेष बदल तुम डारो।
कहो कौन की सुता दुलारी, यामँह, कातूं भला विचारी॥
तबहिं सकुच, बोली मृदु वानी, मनहु कोकिला हिय सुखदानी।
सुनहु नाथ, सब भेद बताचूं, जाकारण, या भेष रचावूं॥

दोहा–बालखिल्य मम तात जनु, याहि नगर का राय।
समय पाय ऐसो भयो, गर्भ लहाई माय॥
तिंहि अवसर आकें कियो, नृप मलेच्छ; संग्राम।
पितुहिं बांध वह ले गयो, ह्वै निर्दय, निज धाम॥

सिंहोदरहिं, हुते अधीना, वह सुन, मम पितु बंधन लीना।
तबही वाने हुकम लगाया, राज मिलै, जन्मै सुत राया॥
समय पाय, मैं जन्म लहाई, लखी माय, हिय चिन्ता छाई।
सचिव बुलाय, मतो कर लीन्हा, मोकों पुत्र प्रगट कर दीन्हा॥

दोहा–राज बचावन हेतु, यों, सिंहोदरहिं, लिखाय।
हुआ पुत्र मम धाममँह, कल्याणमाल कहाय॥
माता तब निर्भय हुई, राज बचा, सुख होय।
युक्ति न सूझी अन्यविध, मंत्र न जाने कोय॥

गोप मंत्र, फुरैं, कहि स्यानें, केवल माता मंत्री जानें।
महामहोत्सव, पुरमँह कीन्हा, दान यांचकन, वांछित दीन्हा ॥
कहँ सब, सुता जाइ यदि होती, राज विवश ही रानी खोती।
राज छीन सिंहोदर लेतो, को, का उत्तर वाकें देतो ॥

दोहा–धन्य दर्श है आपके, पुण्योदय अब आय।
विपति विदारक लख तुम्हें, दीन्हा भेद बताय ॥
लाभ होत है जो कछू, सो मलेच्छ घर जात।
होत रैन दिन चीण मम, चिन्ता सों सब गात ॥

सतत शोक सन्तप्त रहूं में, पूर्व उदय लख, सबहि सहूं में।
बन्दी, पितु म्लेच्छ गृह मांही, कोय छुड़ावन, समरथ नांही ॥
सिंहोदर भी यदी विचारें, नांहि छुड़ावन समरथ धारें।
योंकह, अति हो रुदन मँचाई, गिरी भूमिमँह मूर्छा खाई ॥

दोहा–शीघ्र सचेती सीय ने, लीन्हा गोद बिठाय।
मिष्ट वचन कह वाहि हिय, अति ही धीर धराय ॥
रामहिं,शशि सम सुखद लख, हृदय सिन्धु उमगाय।
बढ़ा ज्वारभाटा सदृश, हिय लहरें लहराय ॥

मृदु वच, कह रघु धीर धरावें, धीरज गह, सब दुख टरि जावें।
लक्ष्मण भी मृदु वचन उचारें, भ्रात जाय तुअ विपदा टारें ॥
लहै न पितु, जबतक छुटकारो, तबतक, याहि भेष तुम धारो।
अब चिन्ता ना, हियमँह लावो, दुर्दिन, याही भांति बितावो ॥

दोहा–सुन लक्ष्मण के मृदु वयन, उपजा हियमँह धीर।
महापुरुष ये दिखत हैं, अवश मिटावें पीर॥
तीन दिवस तक प्रेमसों, रहे तास के धाम।
गवने निशिमँह गुप्त ह्वै, लखण सीय श्रीराम॥

प्रमुदित पुरुषोत्तम मग मांही, चले जात निर्भय, भय नांही।
पहुँचे सरित मेकला आई, उतरे सीय सहित दोउ भाई॥
पुन चल विन्ध्याचलहिं लखाये, गमन, ग्वाल तँह मनें कराये।
विचरें भीषण जन्तु तहां पै, केहरि, अहि, गज मत्त वहां पै॥

दोहा–सुनत राम ग्वालन वचन, कहें हमें भय नांहि।
वीर न शंकें कोउ थल, धीर रखें हिय मांहि॥
रुकें न रोके, जिन हिये, भुजबलका अभिमान।
सबथल विचरत एकसम, निर्भय सिंह समान॥

महा भयानक विपिन दिखावै, सघन वेलि तरु पल्लव छावै।
शब्द भयंकर सुन हिय कांपै, लखे मत्त गज, सिंह वहां पै॥
शूरवीर ये भय ना खाये, केहरि सम ये कीड़ मचाये।
पुष्प सुगन्ध तहां पै छाई, सियमुख अलि पंकति मड़राई॥

दोहा–खग वाईंउर वृक्षपै, शब्द करै घनघोर।
लखा सिया कहि राम से, ऐसा मन ह्वै मोर॥
होय यहां उत्पात कछु, कछुक करो विस्राम।
चीरवृक्ष खग सूचवै, विजय होय अभिराम॥

सिय वच मान ठहर दोउ भाई, गमन उमंग हिये पुन छाई।
लखी अपार मलेच्छन सैना, फड़कें भुजा अरुण भये नैना॥
राम लखण ने धनुष सम्हारा, कीन्हा कस कस अरिपै वारा।
कोय न सन्मुख ठहरन पाये, जाय स्वामिपै वृत्त सुनाये॥

दोहा–सुन मलेच्छपति रुषित हिय, बहुतक सैन्य सजाय।
आया सन्मुख वेग मनु, प्रलय पवन द्रुत आय॥
मद्य मांस भक्षक सबै, हैं काकोदन जात।
क्रूर कुटिल हिंसक निपट, शूर जगत विख्यात॥

घनसम श्याम घटा तँह छाई, लखा लखण ने मार मँचाई।
लगत बाण तुरतहिं तन त्यागें, विकल अंध सम दश दिश भागें॥
कोय न ठहरन समरथ पाये, क्षणमँह वायु विघट घन जाये।
काहु विधि तसु जोर न चाला, इनके शरणें आय उताला॥

दोहा–मलेच्छपति ने विनययुत, पदपंकज शिरनाय।
राम लखण दोउ भ्रात को, अपना वृत्त सुनाय॥
कौशांबी नगरी विषें, विश्वानल द्विजधाम।
रौद्रभूति मैं सुत हुआ, नितप्रति करूं कुकाम॥

द्यूतकलामँह निपुण कहाया, चोरी मांहि रता सुख पाया।
एक समय मैं पकड़ा जाये, दंड, नृपति से शूली पाये॥
संयमधारी, कोय छुड़ाया, संयम चाहा, मन वच काया।
समय पाय, तज संयम दीन्हा, आय मलेच्छपती पद लीन्हा॥

दोहा–बड़े बड़े राजा नमें, थर थर कंपें गात।
भयो विश्व मँह, मैं विदित, कर न सकै, कोउ घात॥
अब तेरे सन्मुख प्रभो, हुआ तेज मम छीन।
सेवक अपना जानकें, समझ लेव आधीन॥

विन्ध्याचल, निधि पूर महाना, करहु राज्य, मो सेवक जानो।
यों कह, वानें, मूर्छा खाई, तन की, सुध बुध, सब बिसराई॥
पतत तुषार कमल मुरझावे, त्यों मुख वारिज या कुमलावै।
राघव निरख, विकलता भारी, ह्वै दयालु, मृदु गिरा उचारी॥

दोहा–उठो, रहो निर्भय तुमहु, देव, बालखिल छोड़।
तसुमंत्री बनकर रहहु, चित अनीति से मोड़॥
अन्य भांति निर्वाह नहिं, कुशल याहि में होय।
सत्कृत कर, सद्गति लहो, मेंट सकै ना कोय॥

ह्वै सचेत हियमँह हरपाया, परम पवित्र हिया इन पाया।
बालखिल्य को तुरत बुलाये, गंध विलेपन कर नहवाये॥
वस्त्राभूषण सज्जित कीन्हें, माला आदिक पहिना दीन्हें।
रथ बिठाय अति स्वागत कीन्हा, बालखिल्य अति संशय लीन्हा॥

दोहा–विधिगति निपट विचित्र लख, क्षण दुख, क्षण सुख लेय।
कौन समय काको कहां, काविध होनी देय॥
खिला पिला बहु आदरें, करें आज बलिदान।
मांस भखहिं, मदिरा पियहिं, रक्षो, हे भगवान॥

बालखिल्य हिय चैन न आवे, दुष्टन हाथ जान अजु जावें।
चलत सचित आय नियराई, तबही दृष्टि परे दोउ भाई॥
ढिग आय, प्रमुदित शिर नाया, त्रय भुवि की निधि, अजुहू पाया।
गदगद ह्वै मृदु गिरा उचारी, दरशन पाये, हे जगतारी॥
दोहा–तुअ दर्शन फल तुरत मिल, दये बंध खुलवाय।
पर उपकारी सतपुरुष, तुम सम आन न आय॥
बोले रघुकुल तिलक तब, बालखिल्य सुन बात।
मिलो जाय निज कुटुम से, मिटा सकल उत्पात॥
रौद्रभूत कों सचिव बनावो, याविध प्रेम परस्पर लावो।
सुनत स्वप्नसम यानें जाना, पूर्ण सुखद हितकारी माना॥
शीस नाय दोउ प्रयान कीन्हा, आ निजथानक परिचय दीन्हा।
यों सुन परिजन पुरजन सारे, विधु वारिधि सम हियो उछारे।
दोहा–पिता हर्ष युत पुत्र को, लीन्हा हिये लगाय।
रानी सन्मुख आयकर, परसे पतिके पाय॥
भयो विदित सबको तबै, धरो सुता नर भेष।
कपटरूप अबतक रहो, विगत भये सब क्लेश॥
सिंहोदर आदिक सुनी, यों अचरज की बात।
बालखिल्य ढिग आयकें, मिले परस्पर गात॥
गर्व भाव त्यागो सबै, राम लखण परभाव।
"नायक" धर्म प्रभाव इमि, जिमि मोती का आब॥

॥ इति पञ्चदशः परिच्छेदः समाप्तः ॥

अथ कपिल ब्राह्मण का चरित्र वर्णन प्रारम्भ

वीर छन्द—

चाले राम लखण पुरुषोत्तम, जनकनंदनी कीड़ै संग।
दिपें देवसम परम मनोहर, की क्रीड़ायें धरें उमंग॥
निर्जल वनमँह हुई तृपातुर, खेदखिन्नसिय अति अकुलाय।
मुखकी आभा हू कुमलाई, मुखसे वचन कहो न जाय॥

दोहा–तृपै कर्म से जीव जिम, पुनहू दाहै चाह।
सम्यकजलके मिलतही, तुरत मिटै हियदाह॥
बैठ रही सिय तरु तलें, चलो न इक पग जात।
उठो प्रिये राघव कही, करहु न हठ की बात॥

पुरमँह चल तहँ सलिल पिवावें, तेरे तृपि की दाह वुझावें।
दै धीरज पुरमँह सिय लाये, कपिलविप्रगृह सलिल पिवाये॥
शीतलजल पिय सिय सुख पाई, चन्द्र, चकोरी लख तृप्ताई।
द्विजपत्नीने आदर कीन्हा, यज्ञथानमँह बिठाय लीन्हा॥

दोहा–आय कपिल निजगृह विर्षे, बैठे इनकों देख।
काष्ट भार अहि बनो, फण उठाय अरि लेख॥
कुपित होय दुर्वच कहे, उगले जहर समान।
तियसों बोला गर्जकर, क्यों दिय इनकों थान॥

धूल धूसरित ये महधृष्टा, यज्ञथान कों कीन्हो भृष्टा ।
होय न शुध्र, यजथानक सारा, अग्निहोत्रि का स्थल हमारा ॥
पापिन तूं ये नांहि विचारी, धृष्टन कों यज्ञ थान विठारी ।
बांध, गाय के थानक मारूं, तोर दया का भूत उतारूं ॥

दोहा-सुन द्विजके यों कटु वयन, कहि सिय रघु से वैन ।
दुठ गृह तें निकसो अबहिं, वेधतहिय दुर्वैन ॥
अहो ग्राम दिख स्वर्गसम, मनुज नारकी जात ।
कलही दुठ अविवेक प्रिय, नर नीके न सुहात ॥

सुन कोलाहल आये लोका, कपिल विप्र को अति ही रोका ।
वृथा काह दुठ वयन उचारैं, बैठे सुरसम कहा विगारें ॥
धन्य भाग्य गृह सफलो पावें, तूं अपमानत नांहि लजावें ।
रैन बसें तुअ कहा विगारें, गमन करें, उठ प्रात सकारें ॥

दोहा-लड़न लगा ये सबहिं से, बोला कटुक कुबोल ।
क्यों आये सब मो गृहें, बिना बुलाये बोल ॥
राम लखण उर हेर कह, रे दुरात्मन नीच ।
निकसो ना तो जबरनहिं, हाथ पकड़ तुअ खींच ॥

कुवच अग्नि हिय प्रजलन लागी, लखण चित्तमँह अति रिस जागी ।
द्विज पद गह के लखण घुमाया, मानो अब वह पछाड़ खाया ॥
देख राम, द्रुत रोक लगाई, इमहि किये अपयश हो भाई ।
दीनहतेतें कुयश अराधो, जिन शासन की "आन" विराधो॥

दोहा—गौ ब्राह्मण यति दीन पशु, तीय वृद्ध अरु बाल।
हैं अवध्य नृपनीतिमँह, तिहुँ भुवि तीनहु काल॥
जैनधर्मकी "आन" यदि, मेंटो अपयश होय।
करहु न भ्राता यों कभी, दुर्गतिदायक सोय॥

द्विज छुड़ाय कहि, चलो यहां से, आगे भूत कर चले वहां से।
सोचें दुर्जनवच दुखकारी, सज्जन का चित करैं विकारी॥
असन पान विन मृत्यु सुहाई, दुर्जनवच दुखदें अधिकाई।
वास सुखद वन कन्दर मांही, दुठ गृह वास सुखद है नांही॥

दोहा—दुर्जन मुख बांवी सदृश, निकसत वचन भुजंग।
श्रवण करत ही विष चढ़त, बढ़त वेदना अंग॥
तजै न कोय स्वभाव निज, कोटक करें उपाय।
होय न मीठी नीम जिमि, घी गुर के सँग खाय॥

राम लखण पुर तजकें चाले, तज कुसंग, वन चले उताले।
लख, पावस ऋतु, अति उमड़ानी, मेह घटा चहुंओर दिखानी॥
दामिनि दमकी, गर्जन छाई, खलसमक्षणक अथिरपण पाई।
इक वट तरु, विशाल लखलीन्हा, तहां वास का निश्चय कीन्हा॥

दोहा—रहै यक्ष तहँ, तरु तलें, आया अपने थान।
निरख तेज इन, जाय पुन, प्रभु से किया बखान॥
मम थानक आये इमहिं, दिपते जिमहिं सुरेश।
निरख तिन्हें, मम हिय कँपो, थिरता रही न लेश॥

सुन यक्षाधिप तँहपै आया, सचमुच, इनका तेज लखाया ।
अवधिज्ञान से इनको जानो, नारायण बलभद्र मानो ॥
रैन समय, उन निद्रा लीन्ही, रत्नन शय्या बिछाय दीन्ही ।
रत्नपुरी, रचकें हुलसायो, मानें, त्रिभुवन की निधि पायो ॥

दोहा—अनुपम नगरी, प्रात लख, हियमँह, अचरज पाय ।
सांचें, यो सब, जँच पड़त, पुण्ययोगतें आय ॥
रामपुरी, उचरी तबै, सेवक, देवी देव ।
दान बटत नित श्रावकन, मन चाहो, सो लेव ॥

प्रश्न नृपति, श्रेणिक ने कीन्हा, काविध पुन द्विज शान्ती लीन्हा ।
सुन गणधर, या भांति उचारा, सुनहु वृत्त अब द्विज का सारा ॥
कछुदिन बीते, द्विज वन आया, ईंधन का, तँह खोज लगाया ।
दृष्टि अचानक पड़ी पुरी पै, भौंचक हो, ना मती फुरी पै ॥

दोहा—सोचै, जो का जगमगै, इन्द्रभवन सम थान ।
घंटा झालर मधुर ध्वनि, गय, हय, रथ, उद्यान ॥
कौतुक अति भासत मुझे, कबहुँ न पुरि इत देख ।
स्वप्न दिखे, या सत्य यो, यों मनअचरज लेख ॥

या सुर माया कोई कीन्हा, या हूं रोगी, विकार लीन्हा ।
शास्त्र मांहि कहि, मरणहिं बातें, दिखत दृश्य, यो, अद्भुत यातें ॥
होवे मनमँह, निश्चय ऐसो, आयो कुमरण नजीक जैसो ।
चितत किय, अधमूंची आखें, आय मरण, अब जीवन नाखें ॥

दोहा—इतनेमह इक यक्षिणी, द्विज को पड़ी दिखाय।
सज्जित वस्त्राभरण लख, द्रुत ताके ढिग जाय॥
मृदुवच कहि, मोकों कहो, कौन पुरी दिखलात।
सुनत सुरी बोली वयन, रामपुरी विख्यात॥

तूं अजान बन, काहे पूंछै, सुनी न देखी याविध सूंचै।
रामपुरी यह, अति सुखदाई, निवसहिं सीय सहित दोउ भाई॥
मणिमय मन्दिर, तँहपै सोहें, ध्वजा पताका लख मन मोहें।
पुरुषोत्तम दोउ तहां विराजें, विरतो आवें, दर्शन काजें॥

दोहा—देंय किमिच्छक दान नित, याचक किये कुवेर।
यांचै जो कछु, तब उन्हें, देत लगत ना देर॥
विप्र कही, मोकों कहो, काविध, दान लहाय।
पावूं दर्शन, कौनविध, महापुरुष ढिग जाय॥

सुनत यक्षिणी, यों बतलाई, तीन द्वार दुर्गम हैं भाई।
रक्षक देव तहां भयकारी, सिंह, व्याघ्र, गज आकृति धारी॥
प्रवेश द्वार, पूर्व शुभ सोहै, श्रीजिनभवन, तहां मन मोहै।
तँहसे व्रती, दर्श को आवें, तभी रामके, दर्शन पावें॥

दोहा—णमोकार मंत्रहिं जपें, व्रती पुरुष, मन लाय।
दर्श पूज, पुन रामसें, मनवांछित धन पाय॥
सुनत यक्षिणी के वचन, द्विज हिय हर्ष लहेय।
सोचै, काविध यत्नकर, द्रव्य रामसें लेय॥

शीघ्र मुनिन के आश्रम आया, द्वय कर जोड़, शीस को नाया।
कहै, दीन पर दया विचारो, श्रावक व्रत विधि, मोय उचारो॥
यों सुन, गुरुने, याहि बताई, जो श्रावककी विधी कहाई।
चतु अनुयोगन भाव प्रकाशो, बोधिज्ञान तब द्विजहिय भासो।

दोहा—सविनय द्विज विनती करे, मोकों कीन्ह सनाथ।
ज्ञानदृष्टि मेरी खुली, लखा मोक्ष का पाथ॥
तृषावान जिमि जल लहै, मिटै हृदय की दाह।
तिमि तृषि मिटी अनादि की, सम्यक सुधा लहाय।

ग्रीषम पंथी, छाया पावै, सरुज औषधी रोग नशावै।
बूड़त को मिल जावै नैया, तासम, तुम हो मोक्ष दिवैया॥
मोकों हितकर दूजा नांही, तो प्रसाद वृष लह्य हियमांही।
श्रावकके व्रत मैंने धारे, नशे अनादी पाप हमारे॥

दोहा—आय गृहै, तियको कहा, सुनहु प्रिये, सुखदाय।
गुरु प्रसाद, जिनवृष गहा, अरु श्रावक वृत पाय॥
ना लह मेरे तात ने, ना पायो तुश्र तात।
यों अपूर्व निधि मैं लई, ह्वै अचरजकी बात॥

काविध, मैं अब तुझे बताबूं, जाविध निधि, श्रीगुरु से पावूं।
लैवें काष्ठ गया वन मांही, लखी पुरी, तासम कहुँ नांही॥
तभी सुरी इक, मुझे बताई, दिख रहि, रामपुरी कहलाई।
श्रावक होय, तहांपै जावें, राम ढिगै, मनवांछित पावें॥

दोहा-यों सुन, गुरु ढिग जायकें, जिनवृष सुना महान।
है श्रद्धा, हिय के विषें, लियो स्वरूप पिछान ॥
सम्यकरवि परगट हुवो, मोह अंध, है नाश।
श्रावकके वृत आदरे, तज विषयनकी आश ॥

सुन द्विजनी हू गुरु ढिग आकें, लिय श्रावक वृत, हिय हुलसाकें।
मनमँह, फूली नांहि समाई, मानी, निधि त्रिभुवन की पाई ॥
स्वरूप श्रद्धा, कबहुं न कीन्ही, सत्गुरु संगति, अब गह लीन्ही।
सत्यधर्मका, मर्म लहाई, कहै, धन्य ऐसे गुरुराई ॥

दोहा-गुरु तो एक निमित्त है, उपादान जिय आप।
प्रगटत जबहिं स्वरूप निज, मेंटत जग आताप ॥
रत्न रूप वृत जानकें, सम्यक्ती गह लेत।
भवभ्रम देत जलांजुली, करत मोक्ष से हेत ॥

द्विजनी, द्विज कछु काल बिताकें, रामपुरी को, चल हुलसाकें।
शिशु को, कांधे पर धर लीन्हें, मारग मँह सुर, अति भय दीन्हें ॥
णमोकार भज, निर्भय हाके, प्रविशे, मन्दिर श्री जिन, धोके।
दर्श, पूज, थुति कर, सुख पाये, रामदर्शको अब उमगाये ॥

दोहा-पूर्व गृह मँह इनहिं को, बोले कुवच अनेक।
अब जावत है दर्श तिन, हिय उत्साह समेत ॥
भूत, भविष्यत ज्ञान नहिं, वर्तमान आधार।
सुख, दुख, हेत, अहेत कर, नांहि विवेक विचार ॥

जो मैं भाव, अवै परकाशा, करूं क्रिया, धर सुख की आशा।
सचमुच है यह, सुख की दाता, या सुख का ये, करै विघाता॥
यों विवेक ना, रंच विचारैं, जो मन भावैं, सोय चितारैं।
निजकर, असि से, पग को हाने, दोष कर्म पै, धर सुख माने॥

दोहा—सम्यग्ज्ञान विशेषता, भूत. भविष्यत संग।
वर्तमानमँह ज्ञान हो, तीनों काल अभंग॥
वस्तुस्वरूप विचारकें, रागद्वेष तज देत।
इष्टानिष्टहिं हेय लख, करैं मोक्ष से हेत॥

मिथ्यादृष्टी, यों ना जानें, भूत, भविष्यत नांहि पिछानें।
यातें, करता है मनमानी, वर्तमान निर्भरता ठानी॥
ताफल, दुखही दुखको भोगे, निज, पर चाहे, योग वियोगे।
परमँह, आपा रूप विचारें, यातें, घोर वेदना धारें॥

दोहा—जगदुख नशै विवेकतें, विवेक, सम्यकमूल।
सम्यक, भेदविशुद्धितें, मिटै, अनादी भूल॥
विना मिटाये भूलकें, दुखी, होत है जीव।
भवदधि मांही रुलत है, जिनवर कहैं सदीव॥

चले दंपती, हिय सुख लेखें, राम छवी, कव नयनन देखें।
मगमँह, भवनन पंकति सोहे, निरखतही अति मनको मोहे॥
क्रमशः राजमहलमँह आये, लक्ष्मण को तँह, विप्र लखाये।
हुआ आकुलित, हियमँह भारी, भगा, चौकड़ी, मृगसम धारी॥

दोहा—करै चितवन मनहिं मन, कहां फँसो मैं आय।
जिन्हें भगाये कुवच्च कह, उननें नगर वसाय॥
यदि ऐसो, मैं जानतो, कबहुँ न धरतो पांव।
अब महि फाटै, मैं धँसू, फँसा मृत्यु के दांव॥

शिशु अरु तिया छांड़के भागा, लखा लखण जब भागन लागा।
विहँस रामसे, तुरत उचारा, लखहु नाथ, वह विप्र पधारा॥
मोकों देख, तुरत वह भागो, झट विद्युतसम, देर न लागो।
सुन राघव, दी आज्ञा ऐसे, वाको, ल्यावहु, आवै जैसे॥

दोहा—पकड़ लाए सेवक तबहिं, राम ढिगै द्विज आय।
"स्वस्ति" उचारा विप्र ने, थर थर कम्पै काय॥
सविनय शीस झुकायकें, गाड़ि दृष्टि महि मांहि।
सलिल भरो नयनन विषें, ऊरध देखै नांहि॥

विहँस रामने द्विजहिं उचारा, सुनहु विप्र, अब वयन हमारा।
तुमने, गृह से पहिल निकासे, कुवच्च कहे, जो हियमँह भासे॥
पुन किम आकें, आशिष दीन्हा, निज मस्तक को झुकाय लीन्हा।
विनय करत अब, अति ही मेरी, समझ न आवै जा विधि तेरी॥

दोहा—विनत वदन द्विज ने कहा, सुनहु हमारी नाथ।
गुप्त महेश्वर आपहो, अब लख, हुआ सनाथ॥
दबी अग्नि जिमि भस्मसे, प्रगट नांहि दिखलाय।
हो निशंक, सब पग रखें, चितमँह भय ना खाय॥

शीत विषैं, रवि तेज नशाये, यातें कोय न भयको खाये।
ग्रीष्म तपै, को सन्मुख आवै, भस्म हटै, पावक प्रज्वलावै ॥
गृहमँह, आप, मोहि ना भासे, तबहिं अवज्ञा, फेर निकासे।
अब साचात लखो तब जानो, गुप्त महेश्वर, तुमको मानो ॥

दोहा—स्वारथ को साथी जगत, निस्स्वारथ ना कोय।
पूजत जग धनवंत को, रंक पूज ना होय ॥
धवल विमल फैला अबै, अनुपम विरद तिहार।
यातें मैंहू अबतही, आया प्रभु, तुम्र द्वार ॥

विहँस राम शुचि वचन उचाये, स्वारथ को संसार कहाये।
अर्थ सगो अरु अर्थ मिताई, अर्थ,माय, पितु, सुत, तिय, भाई ॥
अर्थ, गुरु, पंडित कहलावै, मान्यपना, विन अर्थ गमावै।
अर्थ, धर्म अरु दया कहाई, अर्थहि ने, जग शोभा पाई ॥

दोहा—सद्गुण दुर्गुण सम दिखत, अर्थ विना निस्सार।
धिक धिक ऐसे स्वार्थ को, जाके वश संसार ॥
सत्य अर्थ यों मानिये, रमें नित्य चिद्रूप।
रहै सदा जो एकसम, दे बनाय शिवभूप ॥

न्याय नीति सुन द्विज हरषाया, विकसा आनन हिय सुख पाया।
कहा, नाथ मैं हूं अविवेकी, बुध ना परीक्षा करबे की ॥
सज्जन, दुरजन, को जग मांही, कबहुं सुनें अरु देखे नांही।
यातें गृहमँह आए निकासे, आप रतनसम द्युति परकाशे ॥

दोहा—सनतकुँवर चक्री रुचिर, मुख छवि द्युति अधिकाय।
आया सुर छवि निरखने, तिहिं निरखत प्रमुदाय॥
पुन क्षणगत छवि निरखतहिं, कीन्हा पश्चाताप।
पूर्व छवी सो गत हुई, अब छवि क्षीण मिलाप॥

पारीखो तबही सब जानें, गुण अवगुण निष्कर्ष पिछानें।
प्रथम देव को छवि द्युतिभासी, वाहि छवी दिख, द्युति सब नाशी॥
पूर्व छवी अब गई पलाई, क्षीण अवस्था, पलमँह आई।
क्षणिक विनश्वर सुख दुख मानें, जगजिय आपारूप न जानें॥

दोहा—काललब्धि ठुकराय जिमि, पुन पांछे पछिताय।
तासम गति मेरी हुई, करसे रतन गमाय॥
आप पधारे गेह मम, शुचि सद्गुण भंडार।
मैं लख आदर ना करो, कियो निरादर द्वार॥

शोक हिये अति छाया याको, पश्चाताप सतावै वाको।
का प्रायश्चित्त ग्रहण करूं मैं, जासों निज किय दोष हरूं मैं॥
योंकह अतिही रुदन मँचाया, सुन राघव का हिय भर आया।
रुदनत लख रोये दरबारी, रुदनहिं रुदन दिखावै भारी॥

दोहा—यों आक्रन्दन द्विज कियो, पिघल उपलहू जाय।
पुन नरकी का घातकह, ऐसो रुदन मँचाय॥
इमहिं दशा लख विप्र की, दिय रघुपति संतोष।
धीर बँधायो विप्र को, भूलो अब गत दोष॥

द्विजहिं हिलकियां, सिये लखाई, कह वच, तिहिं संताप धराई ।
अहो भव्य, हिय, धीरज धारो, पूर्व गत, ना वात विचारो ॥
या जगकीही दशा कहाई, भूल करें, चिन्तें, पछताई ।
रच, पच यों, जग मँह अज्ञानी, यातें, भूल करत ना ज्ञानी ॥

दोहा—वचन अमियसम, सिय कहे, तोप दंपतिहिं दीन ।
क्षणमँह ये विलपे, इमहिं, जल विन तड़फे मीन ॥
मुदित सिये, तिन दम्पतिहिं, भोजन पान कराय ।
वस्त्राभूपण मणि खचित, दम्पति को पहराय ॥

दई अपरिमित रत्नराशी, मनो हुई अव, लक्ष्मी दासी ।
यों कुवेरसम दम्पति कीन्हें, गतदूपण भी वताय दीन्हें ॥
मानो दोप हुआ ही नांही, यों आदर दिय, निजगृह मांही ।
महापुरुप की, गति को जानें, अवगुण तज, गुणरूप पिछानें ॥

दोहा—रिद्धिसिद्धि सम्पति विविध, धन धान्यादिकपूर ।
रामकृपा से विप्र की, भई दरिद्रता दूर ॥
विपुलद्रव्य स्वामी हुआ, पुरमँह श्रेष्ठ कहाय ।
किन्तु निरादर जो कियो, ताकी दाह न जाय ॥

मनमँह द्विज, इमि विचार लाये, गुरू निर्धन को, धनी वनाये ।
रह विरूप, अतिक्रूर कुवुद्धी, रघुप्रताप, अव उपज सुवुद्धी ॥
हुती, कुटीमँह तृण आच्छादें, तहां रत्नद्युति, भवन विराजें ।
गृहतें काढ़, जिन्हें मैं दीन्हो, तिन, उपकार परम मम कीन्हो ॥

दोहा–यदपि आज ममसदनमँह, कछू कमी ना आय।
तऊ कुकृति सुधि उर दहत, सही न मोपै जाय॥
यातें जो लग गृह रहूं, तो लग मिटै न शल्य।
धर दीचा, यदि वन वसूं, तदि जिय होय निशल्य॥

यों विचार द्रुत, सबहिं बुलाकें, कह्यो, करूं हित, वनमँह जाकें।
द्विविध परिग्रह को अब छांड़ूं, कुटिल कर्म की सैन्य विदारूं॥
योंसुन, सबही, हुये सशोका, सब नर नारिन, बहुविध रोका।
मुदित होय, यानें समझाया, भ्रमत अनादी अंत न आया॥

दोहा–यातें अब उद्यम करूं, होय जगत का अन्त।
निधि रत्नत्रयमँह रमूं, प्रगटें स्वगुण अनंत॥
योंकह, तत्क्षण गुरु ढिग, आय शीस को नाय।
केशलुंच, मुनिपद गहा, मुक्तिवधू की चाय॥

द्विजने, परिग्रह छांड़ो ऐतो, गय हय धन कन पार न केतो।
सहस अठारह गाय तजाईं, अन्य अपरिमित वस्तु विहाईं॥
नांहि परिग्रह आतम रूपा, रम आतम, अविचल चिद्रूपा।
परिग्रह छांड़त, देर न लागै, आपरूप जब सहजहिं जागै॥

दोहा–कपिल विप्र सुकृत कथन, अजरजकारी दृश्य।
क्षण निर्धन क्षणमँह धनी, क्षण निजात्म अदृश्य॥
पाप पुण्य पुन शुद्ध है, सब परिणति दिखलाय।
"नायक" रमें स्वरूपमँह, अविनाशी पद पाय॥

॥ इति षोडशः परिच्छेदः समाप्तः ॥

लक्ष्मण द्वारा, वनमाला का फांसी से मुक्त होने का वर्णन

वीरछन्द—

विजयनगर नृपपृथ्वीधर तसु, कन्या वनमाला गुणखान।
याने लक्ष्मण रूप शौर्य सुन, ह्वै आसक्त करै नित ध्यान॥
पुत्रीका यों वृत्त सुना नृप, लक्ष्मण को देनी ठहराय।
पै लक्ष्मणका वृत्त सुना यों, पुरतें निकस विपिनमँह जाय॥

दोहा—"वचन" तात का पालनें, राम लखण द्वय वीर।
लघुभ्राता को राज दे, निकसे गुण गम्भीर॥
तब सचिन्त हो, चिन्तवै, पुत्री काको देव।
इन्द्रनगरनृप तसु कुँवर, तिहि परणा सुख लेव॥

यों निश्चय, मन मांहि विचारा, सबसे या संबंध उचारा।
पुत्री ने सुन निश्चय वाणी, प्राण दैन की चितमँह ठानी॥
पति लक्ष्मण बिन दूज न चाहूं, याको त्याग अन्य ना व्याहूं।
याहि प्रतिज्ञा याने धारी, ताहि निवाहन विधी विचारी॥

दोहा—दूजे दिन उपवास कर, संध्या समय उचार।
वन क्रीड़न को जांव मैं, लेय सुभट निज लार॥
योंकह वनमँह जायकें, अर्धनिशा जब बीत।
निद्रावश सब सो गये, याने निद्रा जीत॥

शांतिभंग ना याने कीन्हीं, बिन आहटये द्रुतचल दीन्ही।
चलत सघन इक वट तरु देखो, कार्यसिद्धि को यो थल लेखो ॥
जा समये या प्रयान कीन्हो, ताहिसमय लक्ष्मण लख लीन्हो।
सिये राम शयने थे नीरा, करै चौकसी लक्ष्मण वीरा ॥

दोहा-वर्षा ऋतु वितीत हो, रामचन्द्र उकताय।
रामपुरीतें गमन की, सुनाइ सबको चाय ॥
योंसुन लक्ष्मण अरु सिया, वच अनुमोदन कीन्ह।
ताहिं समय यक्षाधिपति, शोक हृदयमँह लीन्ह ॥

कहै चूक की क्षमा उचारो, जो कछु ह्वै अपराध हमारो।
सुन यों राघव गिरा उचारी, क्षमो सेव जो करी हमारी ॥
सुर प्रसन्न हो आदर कीन्हें, दुहुनहिं हार कुण्डलहिं दीन्हें।
चूड़ामणि हू सिय को दीन्हो, राम लखण सियविहार कीन्हो ॥

दोहा-राम लखण सिय विहरते, याहि विपनमँह आय।
किय निवास आनंद युत, सिये राम पौढ़ाय ॥
निशा मांहि भ्रत लक्ष्मणहु, जागै तजै प्रमाद।
तात मात सम व्यवहरै, धरै चित्त आल्हाद ॥

तबहिं अचानक सुगन्ध आई, आभूषण की चमक लखाई।
को तिय जावै आगे आगे, ताको लख ये पाछे लागे ॥
रहस्य जानन, क्या है याको, सुरी किन्नरी या महिला को।
का कारण ये अर्धनिशा पै, गहन विपनमँह जाय कहां पै ॥

दोहा–याविध लक्ष्मण गोप्य हो, खड़ा हुआ तरु पास ।
अब भविष्यमँह लखन की, हियमँह उमड़ी आस ॥
वनमालाने ता समय, किय गीला निज वस्त्र ।
फांसी तास बनायकें, समझी मृतु का शस्त्र ॥

तरुसे बांध छोर लटकाके, तासे अपना गला फँसाके ।
विलपत याविध गिरा उचारी, सुनहु वृक्ष सुर विनय हमारी ॥
जो कोउ होव यहां के वासी, तुम साक्षी दै, लेती फांसी ।
कबहुं कदाचित लक्ष्मण आवें, कहो संदेशो तुम्हें सुनावें ॥

दोहा–आइ विजयनृप की सुता, वनमाला तसु नाम ।
तुम गुण शौर्य प्रताप सुन, लिय बसाय हिय धाम ॥
"वचन" तात का पालवे, तुमने पुर तज दीन्ह ।
अब तुम मिलनो कठिन लख, मैंने फांसी लीन्ह ॥

हुती प्रतिज्ञा याविध मेरी, शरण लेवगी याभव तेरी ।
जैसी "आन" तुमहु ने पाली, तिमहिं हमहु ना करहैं खाली ॥
चाहे प्रान भले ही जावें, याभव नहिं तो परभव पावें ।
यों कह ज्योंही सांस निसारी, प्राण निकासन फांसि सम्हारी ॥

दोहा–द्रुत लक्ष्मण ढिग आय कर, फांसी को हर लीन्ह ।
मनहु निवासी देव ने, बुलाय लक्ष्मण दीन्ह ॥
लक्ष्मण ले यासे कहा, हूं लक्ष्मण ले देख ।
जैसा निश्चय, तूं किया, ता लक्ष्मण ढिग लेख ॥

योंसुन विस्मित हुइ वनमाला, ताहि समय लख चन्द्र उजाला।
निश्चय लक्षणयुत पहिचानी, सकुचत नयन हृदय हरपानी।
चिन्त्यो, देव बुलाके लाया, आके याने प्रान बचाया।
सुरमहिमा को मुख से गाये, ना हो वर्षों क्षण हो जाये॥

दोहा–हुई भंग निद्रा जबहिं, तबहिं लखें श्रीराम।
लखण अनुज ना दिठि परै, कहां गयो तज धाम।
जनकनंदिनी से कहा, लखण न इतै दिखाय।
सुन सिय ने पिय से कह्यो, पुकारो, लेव बुलाय॥

योंसुन राघव बेग उचारा, आव लखण, हिय प्रान हमारा।
कहां गयो तूं निशि के मांही, छाय सघन तम दिखाय नांही॥
श्रवत लखण द्रुत तबहिं उचारे, आवत हों प्रभु, ढिगै तिहारे।
योंकह वनमाला युत चाले, आय राम ढिग आप उताले॥

दोहा–ताहि समय है शशि उदय, छिटका तास प्रकाश।
वनमाला हू अति दिपै, मनु शशि किरन विकास॥
यों लख सिय विहँसत कहै, सुनहु लखण सुकुमार।
आये हो या थल विषें, चन्द्रमुखी ले लार॥

चन्द्र उदय ने द्युति फैलाई, विकस कुमुदनी अतिसुख पाई।
ता उपमा को तूंने पायो, मनहु चन्द्र रोहिणि को लायो॥
हे शुभलक्षण हो बड़भागी, सियपायन वनमाला लागी।
पुन समीप बैठी मृगनैनी, सकुचत मुदित चित्त पिकबैनी॥

दोहा—तब राघव ने याहि से, पूंछा याका वृत्त।
सकुचत याने सब कह्यो, जो कुछ हुता चरित्त॥
यों सुन सब प्रमुदित हुए, मनमँह कीन्ह विचार।
होनहार बलवान वश, हो गति मति निरधार॥

वनमाला की सखियें जागीं, शून्य थान लख खोजन लागीं।
रक्षक सुभट सबहिं द्रुत जागे, वे हू चहुँदिश खोजन लागे॥
खोजत खोजत या थल आये, वनमालायुत लखण लखाये।
परिचय पाय, स्वामि ढिग जाके, लहा द्रव्य, शुभ वृत्त सुनाके॥

दोहा—अहो स्वामि तुम्र भाग्य तें, राम लखण सिय आय।
धान्यराशि जिम कृपक को, बिन बोये मिल जाय॥
तिम पुत्री का सुभग वर, लक्ष्मण गुण गम्भीर।
आय अचानक पुर ढिगै, सिययुत राघव सीर॥

सिया ढिगै ही सुता तिहारी, बैठी जाके राजकुमारी।
सुन पृथ्वीधर हर्षित होकें, चाले सब शुभ द्रव्य सँजोकें॥
परिजन पुरजन सब नृप संगै, आये सबही धरें उमंगै।
ज्योंही निकट राम के आये, त्योंही फूले नांहि समाये॥

दोहा—हो प्रमुदित मिल भेंट कर, लाये पुर के मांहि।
किय उत्सव नृप हिय विषें, हर्ष समावे नांहि॥
धन्यभाग्य होनी प्रबल, सुता विपिनमँह जाय।
पाई इच्छित वर सुभग, शुभलक्षण सुखदाय॥

परिजन पुरजन ने वर देखो, सबने चितमँह अतिसुख लेखो।
चिन्तें प्रबल पुण्य नृप पायो, कन्या वर घर बैठे आयो ॥
जाविध चाह हुती मन मांही, पूर्ण हुई यामें शक नांही।
याविध आशिष सबही देवें, निरख निरख वर अतिसुख लेवें ॥

दोहा—जगमँह पुण्य प्रधान है, शिवमँह आत्म प्रधान।
यातें ज्ञानी आत्म रम, पावै शिवपुर थान ॥
अटल अखंड स्वरूप निधि, भोगै काल अनन्त।
"नायक" सुख अक्षय मिलत, होय कभी ना अन्त ॥

॥ इति सप्तदशः परिच्छेदः समाप्तः ॥

महाराजा अनन्तवीर्य के वैराग्य का वर्णन

वीर छन्द—

एक समय पै पृथ्वीधर ढिग, बैठे राम लखन दोउ वीर।
तिहिं अवसर इक दूत आयकें, मेल्ही पाती नृप के तीर ॥
ले पाती को पृथ्वीधर तसु, सेवक हाथ पठन को दीन्ह।
दोउ भ्रात हू उत्सुक होकें, चाह श्रवण की हियमँह लीन्ह ॥

दोहा-पातीमँह याविध लिखो, सुन पृथ्वीधर राय।
तुम पै आज्ञा करत, यों, अतिवीरज महराय॥
नन्दावर्तनपुर धनी, वैभव इन्द्र समान।
महाबली जग में प्रसिध, न्याय नीति गुण खान॥

मो ढिग आर्य मलेच्छ नृप आये, ते चतुरंगिनि सेना लाये।
अब हम बाट जोहते तेरी, हुई अवध पै चढ़ाइ मेरी॥
हे पृथ्वीधर ढील न कीजो, सेवक पाती यों पढ़ दीजो।
सुन नृप बोलन को मुख खोलो, ता पहिले ही लछमण बोलो॥

दोहा-कहो दूत, का हेतु तें, उपजा ये उत्पात।
तास मर्म मोसे कहो, श्रवण चाह तसु बात॥
याविध सुन कर दूत ने, कहा सुनहु नरनाथ।
जैसा याका वृत्त है, ताको यूं परकाश॥

अतिवीरज तेजस्वी नामी, आर्य मलेच्छ सबहिन का स्वामी।
भरत ढिगै भी दूत पठाया, आय नमो, जा दूत सुनाया॥
नातर अवधापुर तज देवो, समुद्र पार शरण जा सेवो।
यामें फेर नेक ना जानो, ढील करो तो यमसुख मानो॥

दोहा-सुनत शत्रुहन दूत वच, हिये अनल प्रज्वलाय।
मनु दमार हो लग गई, प्रबल वेग दिखलाय॥
या केहरि मनु ह्वै कुपित, या अहि की फुन्कार।
गजमत्ता चिग्घाड या, तासम की ललकार॥

कहा कहै, रे दूत कुदूता, मात पिता ने, जाव कुपूता।
रंच विवेक न चितमँह धारै, समझ, सोच ना वचन उचारै॥
वह, इत आय शीश को नावै, भरत जाय, किहिं शीस झुकावै।
उल्टी कहत लाज ना आई, उदधि उलंघन, वात सुनाई॥

दोहा—उदधि उलंघै भरतनृप, वशीकरन ता थान।
निज विक्रम, पौरुष प्रबल, जाके, मर्दै मान॥
अन्य भांति जावै नहीं, सुन रे, दूत कुदूत।
क्यों उचरै तूं कुवच वच, धारै कुमद कुपूत॥

गर्दभ सम जनु तेरा स्वामी, सन्मुख जान भरत गज नामी।
वायुरोग वश ह्वै उन्मत्ता, मृत्यु आइ ढिग, हुआ प्रमत्ता॥
ज्यों शृगाल की मृत्यू आवै, उल्टा ही पुर ओर सिधावै।
त्यों हम केहरि वाल, दहाड़ें, अतिवीरज गज मार पछाड़ें॥

दोहा—मूरख को, ना लख परै, होय घूक की जात।
ना जानें, किम रवि तपै, ग्रीष्म समय परताप॥
ताविध भरत नरेश रवि, हैं ये दशरथ नंद।
तात गये विधि नाशने, ये नाशें अरिवृंद॥

तात अग्निसम, विधि अरि दाहें, तास फुलिन्गे, हम अरि ढाहें।
वेणुवृन्द जिम, महदव नाशै, महासघन वन, शीघ्र विनाशै॥
तब अतिवीरज, है कीटाणू, परत अग्निमँह, जवरन, मानू।
यों कह दूतहिं, अति धिकारा, स्वान समान, सवहिं दुतकारा॥

दोहा—दूत निकासो वेग ही, कीन्ह बहुत अपमान।
जाय दूत निज स्वामि पैं, कीन्हा वृत्त बखान॥
सुन अतिवीरज महपती, चितमँह अति रिसयाय।
वेग बुलायें नरपती, सबही सजधज आय॥

भरतराय हू, नृपति बुलाये, जे तिनके आधीन कहाये।
जनक कनक आदिक बहुराई, सब मिल द्रुत ही, कीन्ह चढ़ाई॥
मनहु इंद्र ने कीन्ह प्रयाना, संग सुरन का दल मनमाना।
याविध दूत, लखण से धोला, विग्रह होन, मर्म सब खोला॥

दोहा—सुन राघव ने या विधे, इत उत मँचा विरोध।
द्रुत पृथ्वीधर ने कहा, कीन्हो भरत अबोध॥
ज्येष्ठ अनुज ना आदरे, गृहतें दिये निकास।
मानशिखर पै चढ़ रहो, ना विवेक हिय तास॥

अतिवीरज की शक्ति अपारी, यातें हम सब आज्ञाकारी।
यों कह नृपति, राम प्रति बानी, उत्तर देवें, मसलत ठानी।
जावे को, यों मंत्र विचारो, राम लखण युत पुत्र तिहारो।
पाती मांहि, ताहि लिख दीन्हो, आज्ञा माफक, प्रयान कीन्हो॥

दोहा—नृप सुत युत, राघव लखण, चले सैन्य ले लार।
नन्दावर्तनपुर ढिंग, सिय ने वयन उचार॥
सुनहु नाथ, मोरी विनय, अतिवीरज बलचंड।
भरत न समरथ जीतिवे, ग्रीष्म सूर्य परचंड॥

यद्यपि हम तिय, लघू कहावें, कोइ समय हित बात बतावें।
ताको तुच्छ जान मत गेरो, सूक्ष्मदृष्टि से, विचार हेरो॥
लखण बली ही, जीतै ताको, अन्य न समरथ जीतै वाको।
रघुवंशिनि की विपदा मोचो, लक्ष्मणसहित यत्न, प्रभु सोचो॥

दोहा—गज से मुक्ता पाइये, कबहुँ वेणुमँह पाय।
तास अवज्ञा मत करो, मुक्ता वह कहाय॥
देख, बड़ेहि बड़ेन को, लघु न दीजिये डार।
जहां काम आवै सुई, कहा करै तरवार॥

यों मंजुल वच, सिया उचारी, दोउ भ्रात सुन, हरपे भारी।
कीन्ह प्रशंसा अति ही याकी, नीति मेंटने समरथ काकी॥
वही होय जो योग्य उचारो, हे हितवादिनि, धीरज धारो।
याविध अतिहि प्रशंसो याको, गर्जत बोला, लक्ष्मण ताको॥

दोहा—सुनहु मात, मातेश्वरी, जो आज्ञा तुअ होय।
वही होय निश्चय थकी, मेंट सकै ना कोय॥
अतिवीरज, लघुवीर्य की, मृत्यु आइ, मम हात।
निश्चय सेती जानियो, होवै समय प्रभात॥

चरण प्रसाद भ्रात का पाऊं, कौन कठिन, जो ना कर लाऊं।
मनुज बात क्या सुरन पछाड़ों, शैल, कहो तो जाय उखाड़ों॥
सिन्धु कहो तो, ताहि हटाऊं, केवल तुमरी आशिप पाऊं।
यों कह, लक्ष्मण ने शिर नाया, भ्रकुटि चढ़ी, भुजनहिं फड़काया॥

दोहा-तबहिं राम कह, लखण से, सियने सत्य उचाय।
अतिवीरज अतिशय बली, भरत, दशम ना आय ॥
दावानल के सन्मुख, चलै न गज का जोर।
केहरि हू, हो प्रबल तो, सकै न पर्वत फोर ॥

सोचो, भरत युद्धमँह हारे, रघुवंशिन को कौन उबारे।
मृतकसमान वंश हो जावे, शशिकुल, राहुग्रहण गति पावे ॥
कुलप्रताप हो रविसम जाका, हरै केतु, द्रुत प्रताप ताका।
धिक, जो हम कुलशूर कहाये, शूरपना क्या कामें आये ॥

दोहा-संधि न दुहुमँह संभवे, दोउ उर विगत विवेक।
अभिमानी, बल उद्धतहु, दूजी या अतिरेक ॥
शत्रु सैन्य पर निशि विषै, शत्रुहन कीन्ह चढ़ाइ।
बहुत पछाड़े, बहु मरे, बहुतक सँग ले जाय ॥

यों अतिरेक कोप उपजाया, अरि के हिरदय मांहि समाया।
यातें संधि होन की नांहीं, जानो निश्चय, यो मन मांही ॥
तोकों ही इक समरथ मानों, जानो जाविध, त्यों अरि हानों।
तोको काविध में समझाऊं, सूरज को, का दीप दिखाऊं ॥

दोहा-किन्तु ध्यानमँह या रखो, भरत न जानन पाय।
कोनें हन दिये शत्रु, क्या, राम लखण, इत आय ॥
महापुरुष, वाकों कहत, निज कृति नांहि जताय।
जिमि निशितम गोपै जलद, सांचा मित्र कहाय ॥

यातें बनो गोप्य उपकारी, मानो याविध बात हमारी।
हरषा लक्ष्मण, हिय हुलसाया, नूतन एक उपाय बताया॥
सुन राघव हू, ली मुदिताई, मनहु कार्य की सिद्धी पाई।
ज्यों त्यों दोनों, निशा विताके, प्रभु दर्शे, जिन मन्दिर जाके॥

दोहा–तहां लखीं बहु आर्यिका, तिन थुति, वंदन कीन्ह।
सिय मेल्ही द्रुत, तिन ढिगहिं, अतिसुख मनमँह लीन्ह॥
मन्दिरमँह दोउ गोप्य हो, लीन्हा भेष छिपाय।
नृत्यकारिणी दोउ बनें, अनुपम रूप सजाय॥

सुरसुन्दरिसम रूप सजावें, लखकें मोहित सब हो जावें।
तीर्थंकर के अतिशय गायें, हाव सहित अति भाव बतायें॥
याविध पुरमँह नर्तत जावें, क्रमशः नृपके ढिगमँह आवें।
तँहपै नृपगण सुभग विशाला, मुकुट लगायँ, कंठमँह माला॥

दोहा–सिंहासन पै सोहवै, अतिवीरज महराय।
नर्तत देखीं नर्तकीं, ह्वै प्रसन्न, विहँसाय॥
जब अति मोहित ह्वै गयो, निरख रूप शृङ्गार।
लक्ष्मण धारो वीर रस, फड़कें भुजा अपार॥

भृकुटि चढ़ीं, नयनन अरुणाई, दावानल सम, रिष तन छाई।
अतिवीरज से, वयन उचारो, विरथा, क्यों संहार विचारो॥
प्रभु प्रति रण किरिया आरंभी, लाज न आवै, मूरख दंभी।
शरण गहो, जा शीस झुकावो, काहे अपनी मृत्यु बुलावो॥

दोहा—दशरथ सुत, पौरुष प्रबल, उन तन रहे समाय।
उन सम आन न देखियत, उनसम वेही आय॥
केहरि विक्रम लख सुसा, सन्मुख वाके हेर।
निश्चय नशहि वेग ही, यामँह कछू न फेर॥

तूं दादुर सम, हरिमुख क्रीड़े, मेरु स्पर्शन, बोना हीड़े।
चन्द्र बिम्ब चह, नीर विलोवे, वृथा आपनो पौरुष खोवे॥
दीप मांहि जिमि, गिरे पतंगा, पंचानन से लड़े कुरंगा।
सिन्धु, भुजन से, तिरनो चाहे, ताविध तूं भी कार्य विसाहे॥

दोहा—नृत्यकारिणी मुख श्रवत, वयन अवज्ञाकार।
भरत प्रशंसी, बहु विधहि, मोको तुच्छ उचार॥
सुन अतिवीरज ह्वै कुपित, सभा क्षुभित हो जाय।
कलकलाट तँहपे मँचो, मनहु सिन्धु उमड़ाय॥

अतिवीरज द्रुत असी निकारी, लक्ष्मण छीन्हीं, छलांग मारी।
पकड़ बांध लिय, देर न कीन्हो, मनहु पशुय को, बांध सु लीन्हो॥
पुन सब नृपतिन प्रती उचारो, जाव भरत ढिग, हुकम हमारो।
सबही नृपगण, थरथर कम्पे, सूर्य उदय ज्यों, तम द्रुत जम्पे॥

दोहा—जयजय उचरें भरत की, धन्य भरत महराय।
अतिबल लह, जिन नर्तकी, उनबल कहो न जाय॥
दशरथ नंदन अति सबल, जयवन्ते जग मांहि।
ग्रीष्म सूर्य मध्यान्ह सम, तेज अन्यमँह नांहि॥

सबही नृप मन मांहि विचारें, हम पै भरत कोप विस्तारें।
उन आज्ञा हम, सबहिन विराधी, बनें इतै, नाहक अपराधी॥
कौन दंड अब उनसे पावें, सोच सोच, मनमँह पछतावें।
पुन सब मिल यों, धीरज धारें, महापुरुष, सद्भाव विचारें॥

दोहा–नमन करत ही महतजन, तजदें सकल कुभाव।
चालो, उनकी शरणमँह, नेकु विलम्ब न लाव॥
याविध सुमति विचारकें, आय भरतके पास।
मस्तक नायो विनय युत, धर हिय परम हुलास॥

राम लखण, जिनमन्दिर आये, भक्ति भाव युत, पूज रचाये।
दर्श, पूज पुन अति थुति कीन्ही, अति मुदिताई हियमँह लीन्ही॥
आर्यिकान ढिग, द्रुतसे आके, वंदीं, थुतीं दोउ शिर नाके।
तहां सुरक्षित सीता देखी, सिय हू, लखयों, अतिसुख लेखी॥

दोहा–हर्षित है, सीता कहै, धन्य धन्य दोउ वीर।
अरिगण इमि विदलित किये, यथा सूर्य, तम भीर॥
बांध लाय इत, क्षणकमँह, छत्रपती राजान।
पंचानन बंधन कियो, होनहार बलवान॥

सिय लख, याको दृढ़तर बांधो, कहि, इतनो ना मान विराधो।
भासै जगमँह कर्म दुहाई, श्रेष्ठ होय, यों दुरगति पाई॥
महनर को हू कर्म सतावै, तबहिं अनादर जगमँह पावै।
कीन्ह पराभव, दया न छोड़ो, अब याका दृढ़ बंधन तोड़ो॥

दोहा—हूं महराजा छत्रपति, वसुन्धरा वश कीन्ह ।
पूर्वोपार्जित अशुभवश, पराधीनता लीन्ह ॥
बंधन मोचो, रिस तजहु, राजनीति कहलाय ।
नीति उलंघन मत करहु, याविध सिया उचाय ॥

सुनत अमियसम, सिय के वैना, दयायुक्त, ये चैन लहे ना ।
सादर लक्ष्मण, गिरा उचारी, आज्ञा मारूं होय, तिहारी ॥
याको ऐसा श्रेष्ठ बनावें, सुरहु नमन को चरणन आवें ।
मनुजन की तो बात नियारी, याविध सिय प्रति लक्ष्मण उचारी ॥

दोहा—यों कह, बंधन मुक्त किय, अतिवीरज शिर नाय ।
कहैं, प्रभो दीन्ही सुबुध, भव आताप मिटाय ॥
आज सदृश निर्मल सुबुध, कबहुं न उपजी मोय ।
सो सब आप प्रतापवश, काविध वर्णन होय ॥

याविध सविनय वचन उचारा, जो वश किय भूमंडल सारा ।
सुनराघव, यापै दिठि डारी, कर्मन दशा विचित्र निहारी ॥
राज चिन्ह बिन, तेज न सोहै, गत आभूषण, छवि ना मोहै ।
यों लख राघव, ताहि उचारा, सुन नरपति, अब वचन हमारा ॥

दोहा—दीन वचन ना उच्चरो, अबहू ताविध होव ।
आज्ञा मानहु भरत की, सबविध मङ्गल जोव ॥
हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश, अपयश, विधि होत ।
यातें ज्ञानी विधि हनत, नशाय तसु आघात ॥

सुन अतिवीरज वयन उचारा, रमण न पर का भाव हमारा।
पञ्च ग्राम का, वन में स्वामी, ना पहिचानी, निजनिधि नामी ॥
आत्मरमणता है सुखकारी, वही शूर वरहै शिव नारी।
भोगन का फल मैंने पाया, ताहि क्षणक मँह, विवश गमाया॥

दोहा-दुर्लभ नरतन पायकर, भोगन मांहि गमाय।
ते मूरख भवदधि विषें, बूड़त, पार न पाय॥
यातें तरहों भवदधिहिं, मानूं तुम उपकार।
विधि विभूति रांचों नहीं, निश्चय कीन्ह विचार॥

यों कह, वेग यहां तें चाला, तभी गुरू ढिग, आय उताला।
दीक्षा धारी, ममता छोड़ी, जग की आशा, सबविध तोड़ी॥
आत्मज्योति द्रुत जाग्रत कीन्हें, तास ध्यान कर, अतिशय लीन्हें।
तपे उग्र तप, बाह्याभान्तर, नाशे भाव कर्म निज अन्दर॥

दोहा-सहीं परीषह विविध विध, बारह भावन भाय।
तपके तेज महात्म्यतें, अतिशय तेज दिपाय॥
धन्य धन्य ऐसी घड़ी, आत्मरमणता होय।
"नायक" रमें स्वरूप मँह, निश्चय, शिवपद जोय॥

इति अष्टदशः परिच्छेदः समाप्तः।

अथ अतिवीर्य ऋषिराज के दर्शनार्थ, भरत महाराज का आगमन वर्णन

—वीर छंद—

गह, मुनि, ऋषि, अनगार यतीपद, अतिवीरज अतिशय प्रगटाय।
तपकी महिमा फैली भारी, महा तपस्वी पद शोभाय॥
क्रोध, मान का भाव मिटाके, माया, लोभ हिये तें काढ़।
निधि रत्नत्रय, मांहि रमें नित, ह्वै स्वरूप की श्रद्धा गाढ़॥

दोहा—क्रोध मान माया सहित, लोभ दुखद जगमांहि।
इन चारों को सेय जिय, साता पावें नांहि॥
काल अनादी से भ्रमत, दुखही दुख को भोग।
आत्मनिधी पाई नहीं, कबहुं न धारो योग॥

योग मांहि प्रगटै निज शक्ती, विषय कषायन होय विरक्ती।
विषय कषायन, रम जे प्राणी, आत्मनिधी नांही पहिचानी॥
विषय मूल, जग आशा जानो, मूल कषाय प्रमाद बखानो।
यातें दुहुन वेग ही नाशो, तबही आत्मनिधी परकाशो॥

दोहा—जगवासी, रम अशुभमँह, एक पुण्य इक पाप।
ज्ञानी दोनों लखत हैं, आकुलता के बाप॥
दोनों ही जगहेतु लख, लखें न यों जगवासि।
आत्मनिधी वंचित रहें, जो है ताके पासि॥

उपादेय शुभ पुण्यहि मानै, अशुभ पाप को हेय पिछानै।
समझै, पुण्य विषय सुखदाता, पाप दुःखदे, आत्मविघाता ॥
यों बुद्धी कर आत्म न जोवै, विषय कषाय रमै निज खोवै।
ताहि सुगुरु या भांति बतावें, पाप पुण्य दोउ, हेय जतावें ॥

दोहा–जैसी बेड़ी लोह की, तैसी स्वर्ण, समान।
दुहु को बेड़ी सम लखो, पाप पुण्य दुख खान॥
कबहुँ न सेयो आत्म को, पाप पुण्य वश होय।
शुद्ध अवस्था आत्म की, वे दुहु नश, तब जोय॥

जैसे घीय शुद्ध जब जोवै, जास मिलावट, पर ना होवै।
होय मिलावट, अशुध कहावो, ताका, यों दृष्टान्त लखावो ॥
बदबू तेल मिलै घी मांही, घी का स्वाद, रहै तब नांही।
यदी सुगंधित इत्र मिलावै, तदी घीय का स्वाद नशावै ॥

दोहा–बिना मिलावट शुद्ध है, अशुध मिलावट मांहि।
अशुध पुण्य अरु पाप हैं, इक गह; दूजो नांहि॥
कैसे मिटै अशुद्धता, पुण्यहु गह अशुधाय।
चहो शुद्ध, पुण्यहु तजो, तबहिं शुद्ध कहलाय॥

तज अवगुण, तब गुण कहलावै, तजै न अवगुण, गुण किम पावै।
दोष तजे तें, ह्वै निरदोषी, दोष तजै ना, रहै सदोषी॥
रंच दोष हू, दोष कहावै, रोग नशै, निरोगता आवै।
विषय कषाय रमै सो भोगी, ये दुहु तजै कहावै योगी ॥

दोहा—योगी पद धारण कठिन, त्यागै विषय कषाय।
निज स्वरूप जानें बिना, कैसे योग कहाय॥
अतिवीरज ने अहित लख, विषय कषायन मांहि।
तबही छांड़ो दुहुन को, देर लगी क्षण नांहि॥

क्रोध मान माया अरु लोभा, सेवै जिय तो देय न शोभा।
ये दूषण तज भूषण लेवै, तो गृहस्थ हू सुख को सेवै॥
प्रताप, स्वाभिमान, चतुराई, चौथो जानो मितव्ययताई।
क्रमशः ये तो भूषण जानो, गृहे सदा तो सुख ही मानो॥

दोहा—त्याग ग्रहण निज पद विषै, श्रावक, मुनि पद मांहि।
तज अवगुण, गुण को गहै, दुखी होय पुन नांहि॥
यातैं सबको सीख है, जाति भेद ना कोय।
अमिय पान जोई करै, ताही को सुख होय॥

अतिवीरज के सुत ने जानो, बँधा तात पुन मुनि पद ठानो।
राम लखण ढिग द्रुत ही आया, ज्येष्ट वाहन हू संगै लाया॥
बैठा सुख युत शीस नवाकें, आज्ञा लीन्ह प्रसंग उठाकें।
सुरसुन्दरिसम रूप लहाई, ताह लखण को द्रुत परिणाई॥

दोहा—अतिवीरजसुत विजयरथ, निपुण सुगुण की खान।
लख राघव अभिषेक किय, थापा नृपपद मान॥
मिल भेंटे सब हर्ष युत, अतिही उत्सव कीन्ह।
राम लखण बल अतुल लख, सबने अचरज लीन्ह॥

यों सुन वृत्त भरत ने ज्योंही, अचरज लीन्हा मनमँह त्योंही।
नृत्यकारिणी बांधा ताको, मुनिपद गह, तज जग आशाको॥
तबहिं हास्य शत्रुहन कीन्हा, बांध नृत्यकारिणी लीन्हा।
तब ह्वै कायर दीक्षा लीन्ही, लखा भरत ने, वर्जन कीन्ही॥

दोहा—भ्राता, हांसी मत करो, हांसी, दुख का मूल।
विना प्रयोजन दुख मिलै, न्याय, नीति प्रतिकूल॥
धन्य-धन्य ताकी सुबुध, मुनिपद गहा महान।
नमैं इन्द्र चक्रेश हू, तसु चरणनमँह आन॥

तबहिं विजयरथ ढिगमँह आकें, बैठा सुखयुत, शीस नवाकें।
पुन मृदु मंजुल गिरा उचारी, सुनहु नाथ, इक विनय हमारी॥
विजयसुन्दरी भगिनी मेरी, परणो, सेवा करै घनेरी।
विहँस भरत ने ता प्रति देखो, परणि सुन्दरी अतिसुख लेखो॥

दोहा—सुखयुत सब मिल भेंट कर, भरत कीन्ह सन्मान।
पुन अतिवीरज दरश की, अति रुचि मनमँह ठान॥
शैल शीस शोभित ऋषी, तहां भरतनृप जाय।
उतर अश्व तें नमन किय, अतिहि भक्ति दर्शाय॥

त्रय प्रदक्षिणा दै शिर नाके, कीन्ही थुति पुन, हिय हरषाके।
नरभव सफल आपने कीन्हा, परम दिगम्बर पद गह लीन्हा॥
सब अपराध क्षमो प्रभु मेरो, शरण गहा अब मैंने तेरो।
अरि पितु महल, मसान समानो, निन्दै थुतिकर, भी सम मानो॥

दोहा–विधिवश फल लख लीन्ह तुम, सुख, दुख, हेत, अहेत ।
चिद्विलास चेतन अमल, ताही में चित देत ॥
यों कह, दई प्रदक्षिणा, पुन-पुन शिर नय दीन्ह ।
भक्तिभाव आनंद युत, गमन भरत ने कीन्ह ॥

याविध वंद्य चले अवधेशा, आये पुरमँह, मनो सुरेशा ।
बहुविध विकलप मनमँह छाया, अतिवीरज ने बंधन पाया ॥
नृत्यकारिणी कैसे बांधे, पूर्व अशुभ ही, मान विराधे ।
मालुम होत, सुरन यों कीन्हा, आके, नर्ति भेष धर लीन्हा ॥

दोहा–लह जगसुख, जिय पुण्य से, अरु जगदुख, फल पाप ।
निज स्वरूप पाये बिना, लहै सदा संताप ॥
यातें लहो स्वरूप को, रत्नत्रय प्रगटाय ।
"नायक" रमत स्वरूपमँह, अविनाशी पद पाय ॥

* इति एकोनविंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः *

अथ शत्रुदमननृप द्वारा चलाई गई लक्ष्मण पै, पंचशक्तियों का विफल होने पर जितपद्मा से संबंध होने का वर्णन

—वीरछन्द—

राम लखण सिय, पृथ्वीधर गृह, आनँदसें निज काल विताय।
गमन विचार कीन्ह प्रमुदित ह्वै, लखण, विदेही सह रघुराय॥
लक्ष्मण से वनमाला बोली, त्यजन चाह, क्यों लीन्ह बचाय।
मैं वियोग ना सहनें समरथ, यों कह, नयनन नीर वहाय॥

दोहा—यों लख, लक्ष्मण ने कही, सुनहु प्रिये, मम बात।
मैं पांछे, पुन आउँगो, काहे तूं अकुलात॥
शीघ्र न आऊं लैन तो, शपथ देत हूं तोय।
मिथ्यादृष्टी सम कुगति, निश्चय मेरी होय॥

मुनि निन्दक जिमि जन्म गँवावै, वच असत्यफल, दुरगति पावै।
ताविध मैं भी फल को पावूं, तुझे लैन मैं, यदि ना आवूं॥
तात वचन को अवश निभावें, उदधि तीर हम थान बनावें।
तहां न भूमिज का अधिकारा, ऐसा दृढ़ संकल्प हमारा॥

दोहा—प्रिय संबोधी, या विधहिं, वह हू धीरज धार।
आय राम ढिग, लखण द्रुत, हो गवनन तैयार॥
राम लखण सिय, निशि विषें, गवने करत विनोद।
गमन करत, क्रीड़त चलत, धारें हियमँह मोद॥

ऐसा अतिशय पुण्य कमाया, जहां जांय, तँह सब सुख पाया।
काहु भांति की कमी न पाई, सुख सामग्री सहजहिं आई॥
ग्राम, नगर, पुरमँह नरनारी, लखकें, करें प्रशंसाभारी।
घहुड़ वहुड़ पुन निरखें देखें, अचल निमिष,हियमँह सुख लेखें॥

दोहा—अग्र राम पुन सीय हू, पांछे लच्मण जाय।
दुहू शैल के मध्यमँह, मनु सरिता दिखलाय॥
राम लखण सिय गमन मँह, ऐसो होवै भान।
पर्वत संगम मध्यमँह, दामिनि दमक दिपान॥

भांति भांति की उपमा पाये, वर्णन मांहि कहां तक गाये।
पाई लोकश्रेष्ठ सब वातें, अतिशय पुण्य कमाया, यातें॥
दोउ भ्रात देवन सम क्रीड़ें, डाल हिंडोला, तरु पै हीड़ें।
दोउ भ्रात मिल सियहिं झुलावें, सिय मुख पै अलिगण मडरावें॥

दोहा—मानो पहुप सुगंध तें, अली रहे हैं झूम।
बहुतक सिया उड़ाय उन, तऊ मँचावें धूम॥
किसमिसाय रिसधर कहे, खांय जात हैं क्रूर।
दोऊ भाई विहँसकें, जाय खड़े हो दूर॥

यों सुन राघव वयन उचारें, मुखसुगंध तें अलि गुंजारें।
संग न अलिहू छाड़न चाहें, वेहू निज कर्त्तव्य निवाहें॥
सबहिन को तूं प्यारी होई, त्यजन न चाहें तोकों कोई।
याविध मंजुल गिरा उचारी, सुनत विदेही हरषी भारी॥

दोहा–पुरुषन को मारग सहज, कठिन तियन को होय।
पांव पियादे चालिबो, भूमि सकंटक जोय॥
ऊबड़ खूबड़ भूमिमँह, सिय पग नांहि हटाय।
पिया सहारो ही लखै, हियमँह धर उत्साह॥

गँवनत क्षेमांजलिपुर आये, लखण व्यञ्जन बना खिलाये।
यों लक्ष्मण की भक्ति अपारी, लख सिय राघव हरषें भारी॥
तबहि लखण या भांति उचारो, सुनहु नाथ मन चहै हमारो।
ये पुर सुन्दर देखहुँ जाके, आज्ञा देवो, कह शिर नाके॥

दोहा–लख राघव अनुजहिं विनय, मनमँह हर्ष सु लीन्ह।
अति ही प्रमुदित होयकें, याको आज्ञा दीन्ह॥
ह्वै हर्षित लक्ष्मण चले, शोभै गलमँह माल।
नीलाम्बर कछनी कसी, दीपै रविसम भाल॥

वन, सरिता, उद्यान निहारे, वापी कूप तडाग अपारे।
जिनमन्दिर की पंक्ती सोहै, रचना रुचिर निरख मन मोहै॥
इनको रूप निरख नर नारी, सबहिं परस्पर गिरा उचारी।
जितपद्मा लायक वर योहै, रूप सुगुण छवि तासम सोहै॥

दोहा–सुन लक्ष्मण पूंछी तबहिं, को जितपद्म कहाइ।
तास वृत्त वर्णन करहु, मो सम छवी उपाइ॥
रूप सुगुण किम सम हुई, किम मम लायक जान।
है लायक तो परणि ल्यूं, यही प्रतिज्ञा ठान॥

सुनी प्रतिज्ञा जो इन धारी, विहँसे सुनतइ नर अरु नारी।
कहें परणिवो सहज न जानो, ताहि मृत्यु को मुख ही मानो॥
कुँवर अनेकन ध्वंसे जानें, परणि साज तो दूर प्रमानें।
श्रवण चाह यदि तुमको ताकी, श्रवहु, बताँय कथा अब बाकी॥

दोहा–शत्रुदमननृप, तसु सुता, जितपद्मा तसु नाम।
रूप सुगुण की आगरी, अइ मनु तज सुर धाम॥
नर का नाम सुहाय नहिं, परिणय तो अति दूर।
सुता प्रकृति लख तात ने, कीन्ह प्रतिज्ञा क्रूर॥

जो कोउ शक्ती खावें मेरी, परणों, ताहि लगे ना देरी।
नरपति शक्ति सभी कोउ जानें, सिन्धु प्रलय सम जीवन हानें॥
सुनत सुता हू, अति विहँसानी, उत्तम युक्ति तात ने ठानी।
शक्ति खान ना, समरथ कोई, खावैं शक्ति, वरन तब होई॥

दोहा–जीवन जाय विलाय तो, पुन कन्या किहि अर्थ।
प्रान परम प्रिय, जगतमँह, जा बिन, सब कछु व्यर्थ॥
प्रान दिये, कन्या मिले, तो क्यों देवैं प्रान।
प्रानन से प्रिय कछु नहीं, सभी जगत जन जान॥

सो अबतक जिन शक्ती खाई, तिन यम की पाहुनगति पाई।
ऐसी शक्ति न तुमने जानी, वृथा प्रतिज्ञा, परिणय ठानी॥
यों सब, इनसों वचन उचारे, शंकित ह्वै, मनु आंसू ढारे।
विरथा बात उठाई, यासों, लायक वर लख, कह दइ, तासों॥

दोहा—सुन लक्ष्मण ह्वै अति कुपित, नयन अरुणता छाइ।
भ्रकुटि चढ़ीं, भुज फड़कतीं, मनहु विजय ही पाइ॥
सोचै लक्ष्मण मनहिं मन, क्यों कन्या यों ठान।
हुई मरकिनी गाय सम, जबरन लेवै प्रान॥

चिन्तत लक्ष्मण यहँसे चाला, राजद्वार पर आय उताला।
द्वारपाल ने ज्योंही देखो, अतिशय रूप निरख सुख लेखो॥
कहै कहां से तुम इत आये, कहा प्रयोजन, मनमँह चाये।
वेग आप बतलावहु मोकों, बिना प्रयोजन, पैसन रोकों॥

दोहा—सुन लक्ष्मण यासे कहा, नृपति मिलन, मम चाव।
स्वामी ढिग, तुम जायकर, आयस लैके आव॥
सुन वह पर को भेल्हकर, नरपति के ढिग आय।
नयकर, नृपसे, यों कहा, सुनहु हमारी राय॥

एक पुरुष रजद्वारे आया, सुघर, पुष्ट, दिपती तसु काया।
आय, आपसे मिलना चावै, पैसन का वह हुकम मँगावै॥
यों सुन, नरपति आज्ञा दीन्ही, आय लखण, दिठि इत उत कीन्ही।
खड़े रहे निर्भय चित मांही, मनो सिंघ है, शंकै नांही॥

दोहा—श्याम, सलोनो, सुभग तन, छकी सभा, इन देख।
मनो सिंघ सम्मुख खड़ो, नृप विकार मन लेख॥
कहि नृप, तुम आये यहां, कौन प्रयोजन पाय।
सुन लक्ष्मण, बोले विहँस, भरतदूत हम आय॥

विचरहिं महि पर, जँह सुखपाये, वृत्त कछुक सुन, इत चल आये।
हे अति मानिन, सुता तिहारी, ताहि परणिवे, चाह हमारी ॥
सुन नरपति, यों विहँस उचारो, शक्ति सहो, तो दुहिता पावो।
सुन, कहि लच्मण, शंक न लावो, एक नहीं, दशपांच लगावो ॥

दोहा—लख जितपद्मा, लखण छवि, कामबाण विध जाय।
लच्मण ने हू ता लखी, कामपताका आय ॥
जितपद्माने वर्जियो, तुम मन शक्ती खाव।
संकेतो याविध इन्हें, नयन कटाक्ष लगाव ॥

योंलख, लच्मण हू संकेतो, डरो मती तुम, नृप बल केतो।
यों निर्भय लख, धीरज लावें, सोचें, विजय अवश यह पावें ॥
पै मन, चंचल, अति मचलायें, यों ना होय, कमर कछु खाये।
यातें चितमँह छाइ उदासी, फल देखन हिय आश प्रकासी ॥

दोहा-होनिहार बलवान है, चहै न नर का नाम।
आज लखण को लखत ही, हिये मांहि विधकाम ॥
यों संसारिन की दशा, पलटत लगे न देर।
यातें मालुम पड़त, है, कर्मन का सब फेर ॥

लखा लखण ने, नृप कछु सोचें, कहा, लगाव शक्ति जो रोचें।
ढील लगावत, अब तूं काहे, कहा विचारें, का मन चाहे ॥
यों सुन, राजन विहँस उचारी, दिखत मृत्यु अब, आइ तिहारी।
शैल समुन्दर, सब थल कम्पे, जासमये, मोशक्ती जम्पे ॥

दोहा—ना मानत तो लेव अब, यों कह, शक्ति चलाव।
दक्षिण भुज मँह लखण लिय, मनहु गरुण, अहि दाव॥
वाम भुजा दूजी लई, तिय चतु, कांखहिं खाय।
शक्ति युक्त सोहै लखण, गज चौदन्ता आय॥

पंचम शक्ति, लखण जब झेली, दीरघ सांस नृपति ने लेली।
अद्‌भुत शक्ति याहि तन मांही, मेरी शक्ति चलै अब नांही॥
यों लख, लक्ष्मण पुन ललकारा, चलाव जितबल, होय तिहारा।
मँचा सभामँह, जयजयकारा, अनुपम बलधर, आज निहारा॥

दोहा—देवदुन्दभी हू बजीं, सुमन वृष्टि, सुखकार।
वादित्रन की ध्वनि हुई, नौबतादि नकार॥
नृपति अधोमुख कर लियो, कछू न देत जबाव।
जैसे उतरत जगतमँह, मणि मोती का आव॥

जितपद्मा हिय हर्षित होकें, आय लखण ढिग, आनँद जोकें।
याविध, वर वधु जोड़ी सोहै, मनु शशि रोहिणि छवि मन मोहै॥
द्रुत लक्ष्मण ता ओर निहारे, शची खड़ी मनु, ढिगै हमारे।
कनक वरन छवि द्युति परकासै, लोक श्रेष्ठ सुन्दरि, यह भासै॥

दोहा—पुन लक्ष्मण ने ससुर प्रति, मंजुल वयन उचार।
प्रभो, क्षमो, अपराध मम, बालबुद्धि निरधार॥
अनुचित चेष्टा हम करी, कछु विवेक ना कीन्ह।
आप ज्येष्ठ महपुरुष हो, विनवत, यों कह दीन्ह॥

सुन नरपति हरषा मनमांही, है नृपकुँवर, दूत ये नांही ।
याके वचनन हो परतीती, उचरें वचन न्याय अरु नीती ॥
इमहिं चिन्त्य द्रुत, हिये लगाया, पुन याकी अति महिमा गाया ।
धन्य तात अरु माय तिहारी, जिनने जाया यों बलधारी ॥

दोहा-गजमद टारन शक्ति यह, आप विफल कर दीन्ह ।
अतिविक्रम पौरुष प्रबल, जगमँह तुमने लीन्ह ॥
कहा प्रशंसों वीरता, जगसर्वोपरि जान ।
तुममहिमा अद्भुत अगम, ह्वै ना, ह्है आन ॥

यों नृपने यश बहुतक गाया, सुन लच्मण, निजशिर को नाया ।
नृप कहि, मम विन्ती सुनलीजे, पाणिग्रहण पद्मा का कीजे ॥
सुन लच्मण, यों वयन उचारे, भ्राता भावज संग हमारे ।
उन बिन पूर्ति न होय तिहारी, न्याय नीति मँह, याहि उचारी ॥

दोहा-योंसुन नृप हरषेहिये, रथमँह लखण बिठाय ।
सुता सहित गवने तुरत, जँह सिय अरु रघुराय ॥
परिजन पुरजन हू चले, सँग गय हय असवार ।
नर्तत जावें नर्तकी, वंदी विरद उचार ॥

कलकलाट सुन, सिय हिय कांपी, मनमँह चिन्ता अतिही व्यापी ।
कहै, लखणने रार मँचाई, विग्रह करन सैन्य इत धाई ॥
करो उपाय, नाथ जो जानो, यामँह, प्रभो, न शंका मानो ।
धूल पटल अम्बर लो छाये, उदधि समान सैन्य इत आये ॥

दोहा—सभय वयन सुन सीयके, बोले द्रुत रघुराव।
धरहु धीर, हियमँह, प्रिये, ना इतनी अकुलाव॥
लख धनुपहिं, रघुपति कही, कौन सुभट जग मांहि।
आके, मो सन्मुख टिकै, जगमँह, जन्मा नांहि॥

लखीं नर्तकीं नर्तत आवें, वादित्रन ध्वनि, नाद मँचावें।
लख रहस्य, सिय को समझाया, मंगलसूचक चिन्ह लखाया॥
यातें रंच न, भय चित धारो, अपनी शंका वेग निवारो।
यों मंजुल वच, राम उचारे, तबलों, सबजन, ढिगै सिधारे॥

दोहा—परिजन पुरजन सह नृपति, आये राघव पास।
लक्ष्मण जितपद्मा सहित, बैठा, हिये हुलास॥
राघव को, सब शीस नय, पुन नृप विन्ती कीन्ह।
चलहु नाथ, पुरके विषें, यों कह स्वीकृति लीन्ह॥

राम लखण सिय, चढ़े सवारी, संग नृपति दल, दंगल भारी।
प्रमुदित प्रविशे, महलन मांही, हर्ष समाय हृदय मँह नांही॥
याविध स्वागत नृपने कीन्हा, पुन पद्माको परणा दीन्हा।
करी कछुक दिन, तँह पहुनाई, पुन गवनन की मनमँह छाई॥

दोहा—गवनत लख, हो तिय विकल, लक्ष्मण धीर बँधाय।
वनमाला से जिमि कही, तिमि याको समझाय॥
जलबिन तड़फै मीन जिमि, तिमि जितपद्महिं छोड़।
राम प्रेम से बँध रहे, नांहि सके मुख मोड़॥

अर्ध निशा पै, उठकर चालें, कोय नांहि तब रोकनवाले।
अग्र राम पुन सियहू चाली, पीछे लखण करें रखवाली॥
मार्ग मांहि, जिह्वा रथ चाढ़ें, सिय निमित्त से धीरे चाढ़ें।
परमहुलास हिये मँह धारें, गवनत मगमँह सुख विस्तारें॥

दोहा—देश देश के नृपतिगण, पद पूजन को आयँ।
राम लखण सिय विहरते, क्रमशः बढ़ते जायँ॥
पुण्योदय जगसुख विभव, निशिदिन नूतन पाय।
"नायक" रमत स्वरूप मँह, शिव वैभव प्रगटाय॥

* इति विंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः *

अथ रामचन्द्र, लक्ष्मण के द्वारा देशभूषण और कुलभूषण स्वामी का उपसर्ग निवारण, पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त होने का वर्णन

—वीर छंद—

राम लखण सिय, प्रमुदित चालें, नाना केलि करत सुखदाय।
एक समय पर वनमँह आये, चित प्रसन्न, निर्भय द्वय भाय॥

तँह राघव रच, सिय पहिराये, पुष्प आभरण रुचिर अनूप।
कर्णफूल, गलहार सजायो, शचिसम शोभै सिय का रूप॥

दोहा–भँवर गुँजारें सिय मुखहिं, वपुहिं सुगंधित लीन।
पुष्प आभरण से बढ़ी, सौरभ सुभग नवीन॥
मनहु इंद्र राघव सहित, सिय अति केलि मँचाय।
पै अलिगन से ह्वै दुखी, राघव, अलिहिं उड़ाय॥

झूम अलिहि पंकति मड़राई, सिय ह्वै विकल चैन ना पाई।
जँहपर जाय, तहां मड़रावें, विहँस राम पुन, पुनहु उड़ावें॥
पुन सिय से कहि, मंजुल वानी, तजन न चाहत, इन हठ ठानी।
अतिहि सुगंधित वपु तूं पाई, बाढ़ी पुष्पन से अधिकाई॥

दोहा–हास्य, केलि, मग मँह करत, चले जाहिं दोउ वीर।
सीय सलोनी रुचिर सँग, चित प्रसन्न गम्भीर॥
तेज दिपै रवि से अधिक, शशि से द्युति अधिकाय।
चित विनोद नूतन करें, शोभा कही न जाय॥

यों क्रीड़त, प्रमोद युत आये, वंशस्थल को ढिगै लखाये।
नगर निकट पर्वतहु उतंगा, वंशस्थल गिरि, सुवरण रंगा॥
सांझ समय, भागें नरनारी, लखत राम ने गिरा उचारी।
काह बात सें भय तुम धारो, रहस्य याको हमें उचारो॥

दोहा–सुन राघव का प्रश्न इमि, इक नर उत्तर दीन्ह।
सुनहु प्रभो, या रहस यों, जसु भय हम सब लीन्ह॥

तीन दिवस तें, रैन मँह, अति ध्वनि, गिरि तें होय।
कँपत भूमि, तरु जड़ उपड़, मनहु मृत्यु मुख जोय॥

कूप, सरित जल बांध उखाड़े, कर्ण बधिर हो, तन अति ताड़े।
महा घोर रव, चहुँदिश छावे, युवतिन गर्भ, पतन हो जावें॥
यातें ठहरन समरथ नांही, क्रीड़त कोउ सुर गिरि के मांही।
की, हम सबके नाशन क्रीड़ा, वानें लीन्हा उठाय बीड़ा॥

दोहा-काविध अब कैसा करें, कछू समझ ना आय।
निशि भीजें त्यों त्यों बधे, पांच कोश ल्यो जाय॥
प्रात समय मिट जात रव, तबही आगम होय।
या भय से हम सब दुखी, मेंट सके ना कोय॥

यों कह वहतो द्रुतही भागो, सुनत सिया हिय कांपन लागो।
द्रुतही पियसे गिरा उचारी, सुनहु नाथ इमि विनय हमारी॥
चलें अपुन हू जँह सब जावें, प्रात होत ही सब सँग आवें।
देश काल लख नीति विचारो, विपति विसाहन हठ ना धारो॥

दोहा-सुन सिय के भययुत वचन, विहँसत दूहू उचार।
तुमहु जाव उन संग मँह, जहां जांयँ नर नार॥
प्रात होत ही आइयो, हम दोउ गिरि पर जांयँ।
लखहैं या उत्पात को, रंच न हम भय खांयँ॥

वे तो कायर दीन कहावें, यातें चितमँह अतिभय खावें।
हमतो शूरकुली हैं वीरा, चित निर्भय, ना भय हम तीरा॥

बिन देखें हम चैन न पावें, यातें अवश शैल पर जावें।
योंकह छांड़ नयन अरुणाई, भृकुटि चढ़ी अरु भुज फड़काई॥

दोहा—सुन सिय दोउ के वीर वच, चितमँह धर सन्तोप।
इनकी हठ ना टर सकै, चिन्तत किया न रोप॥
पिय पांछे सिय चल पड़ी, हुये छिन्न पग दोय।
तऊ न दुख हिय मँह कियो, पिय अनुगामिनि होय॥

शैल शिखर पै चढ़न न पावै, तब कर गह पुन राम चढ़ावै।
तिया हिया लह निर्बलताई, जातिपणा स्वाभाविक पाई॥
निर्भय करन वयन दोउ भाखें, गिरै न सिय यों ध्यानहु राखें।
क्रम से चढ़ गिरि ऊपर आये, कर गह सिय का जस तस लाये॥

दोहा—शैल शिखर पहुँचे जबै, निरखे द्वै मुनिराज।
भुज प्रलंब निर्भय खड़े, मनहु शान्ति साम्राज॥
परम शान्त मुद्रा निरख, जनहु सिन्धु गम्भीर।
पवन समान अलिप्त तन, विधि नाशक महवीर॥

यों लख हरखे दोऊ वीरा, आये प्रमुदित ह्वै मुनि तीरा।
दै प्रदक्षिणा अति थुति कीन्हें, धन्य भाग्य हम दर्शन लीन्हें॥
जगतजाल तुम लखो असारा, यातें रमत स्वरूप मँझारा।
आतम ज्योती आप जगाई, निधि रत्नत्रय अनुपम पाई॥

दोहा—यों थुति कर बैठे जबै, हुआ शब्द घनघोर।
लिपटे मुनि तन आयकें, बीच्छू सर्प कठोर॥

आसुरीय माया समझ, कुपित हुये दोउ भाय।
देख भयातुर सियहिं हिय, राघव धीर.. बँधाय ॥

वृश्चिकादि सब जन्तु निसारे, दानवकृत उत्पात निवारे।
निर्भय महाबली दोउ बीरा, बैठे सविनय मुनि पद तीरा ॥
पद पद्मन की कीन्ही पूजा, तुमसम हितकर और न दूजा।
वीण मधुर रघुचन्द बजावें, पञ्चम स्वर लय लक्ष्मण गावें ॥

दोहा-ठुमकि ठुमकि सिय नृत्यकिय, अद्भुत दृश्य दिखाय।
मनहु देव देवाङ्गना, साज बाज इत आय ॥
मुनि अखंड धीरज धनी, सेय धर्म अरिहन्त।
गुणगण मुक्ता चुगहिं नित, आतम मानसर हंस ॥

हावभाव मनहरन बताये, श्रीजिन, गुरुके अतिगुण गाये।
भक्ति अनूपम तीनों कीन्हें, वनचर का हू मन हर लीन्हें ॥
अतिशय पुण्य बंध कर लीन्हा, अशुभ विदारन तत्क्षण कीन्हा।
याविध भक्तत संध्या आई, पश्चिम दिश अरुणाई छाई ॥

दोहा-दिनकर अस्ताचल गये, तारक मन्द प्रकाश।
फैलो दशदिशि माँह तिमिर, बैठे सब मुनि पास ॥
कीन्ह असुर माया तबहिं, भूत भयंकर दीख।
अति विकराल भयावनें, गड़ हड़ कर पुन चीख ॥

अतिहि अग्नि ज्वाला बरसावें, वज्र पतन सम भूमि कपावें।
बरसी अतिहि रुधिर की धारा, नृत्य कलेवर अपरम्पारा ॥

सप्त तत्त्व षट द्रव्य का, भेदाभेद बताय।
कमल खिलै लह रवि किरण, तिमि सबभवि खिल जाय॥

पुन राघव ने प्रश्न उचारा, क्यों सुर किय उपसर्ग अपारा।
हमें लखत ही, क्यों वह भागा, तत्क्षण भगा, विलम ना लागा॥
याका रहस हमें समझावो, अपना हू वृत्तान्त बतावो।
नवयौवन मँह जगरुचि टारी, संग दुहुन क्यों दीक्षा धारी॥

दोहा-यों राघव का प्रश्न सुन, सभा भई खुशहाल।
सबहिन की इच्छा हुती, त्यों पृच्छो गुणमाल॥
केवलि की वाणी खिरै, एक पद्मिनी ग्राम।
अमृतसुर इक दूत, सुत, उदित, मुदित गुणधाम॥

अमृतसुर को नृपति पठाया, संग मित्र वसुभूति सिधाया।
मित्र फँसा याकी तिय मांही, यह, अमृतसुर जानें नांही॥
अमृतसुर को याने मारा, आके वाकी तियहिं उचारा।
वाको हन कर, असि ले आये, दुहु सुत हनन, सलाह रचाये॥

दोहा-सुनी उदित की वधु तबहिं, याविध कीन्ह सलाह।
जाय उदित से वृत्त कह, माय, तात हनवाय॥
अब तुम को हू हनन चह, सावधान हों जाव।
तात असी, मांढिग रखी, लखके निश्चय लाव॥

यों सुन उदित, मुदित ढिग आया, तात हनें का वृत्त बताया।
मांके ढिग, असि लाके दीन्हें, जाय मुदित हू, असि लख लीन्हें॥

नग्नडाकिनी हू तँह नर्तें, मुण्डमाल को गलमँह वर्तें।
वक्र भौंह नेत्रन अरुणाई, यों सुर माया अतिहि रचाई॥

दोहा–क्षपक श्रेणि पै मुनि चढ़े, शुक्लध्यानबल पाय।
अंतरयामी ह्वै मुनी, अतिशय ध्यान लगाय॥
यों सुर की माया निरख, सीय अधिक भय खाय।
मुनि चरणनमँह मेल्ह सिय, राघव धीर बँधाय॥

राम उठाय धनुष टन्कोरा, लक्ष्मण हू किय रव घनघोरा।
मेह समान शस्त्र निज छोड़े, मुण्ड रुण्ड सब उनके तोड़े॥
लखा असुर, ये दोऊ वीरा, हर, बलभद्र हैं मुनि तीरा।
सन्मुख टिकन न समरथ जानी, ना चलहैं मेरी मनमानी॥

दोहा–असुर पलायन ह्वै तुरत, हर, बलभद्र जान।
पुण्य तेज अतिशय लखत, हार असुर हू मान॥
श्रीजिनधर्म प्रसाद से, टला असुर उपसर्ग।
तबही हरषे चित विषें, राम लखण सिय वर्ग॥

दुहू मुनिन नें मोह विदारो, दूजा पाया बल विस्तारो।
तभी रहस रज शीघ्र विनाशे, केवलज्ञान शक्ति परकाशे॥
चतुरनिकाय देव द्रुत आये, गंधकुटी रच, पूज रचाये।
सभा मांहि नर सुर तिरयंचा, सबही ध्वनि सुन, भेद न रंचा॥

दोहा–भवि जीवन के भागतें, खिरी केवली वान।
नय प्रमाण निक्षेप युत, कीन्हा सविध बखान॥

तात हनें का निश्चय माना, ताहि हनन का, मनमँह ठाना।
जाय निशामँह वाकों मारो, पितु का बदला वेग निकारो॥

दोहा—मतिवर्धन आचार्य इक, विपिन तिष्ठ युत संघ।
तबहिं गुराणी आर्यिका, अनुन्धरा गुणवन्त॥
येहू आई संघयुत, ठहरीं तिहिं उद्यान।
जँह मुनिगण तिष्ठे हुते, धरें स्वात्महिं ध्यान॥

नृपका ये, उद्यान कहाया, दुहुन संघ नें ध्यान लगाया।
लख वनपालक, चित भय खाके, वृत्त कहै नृपसों शिर नाके॥
तिष्ठे, वेग दुहू सँघ आके, मैं ना वर्ज्या, चित भय खाके।
एक दोय हों वर्जूं जाके, ध्यान लगाया उनने आके॥

दोहा—कहो प्रभो, कैसो करों, वेग उपाय बताव।
नांहि कहों यदि आपसे, तदि आपहु रिसयाव॥
सुनत नृपति हर्षित हुये, विहँसत दीन्हा दान।
पुन याविध ताको कहा, कार्य सराहन जान॥

नांहि तपस्वी वर्जे जावें, धन्य भाग्य, जो निजथल आवें।
सुन वनपालक अति सुख पाया, आके मुनिप्रति शीस झुकाया॥
नगर ढिढोंरा नृप दिलवाये, बहु विभूति युत, मुनिढिग आये।
भक्ति भाव युत दर्शन कीन्हें, थुति उचरत हियमँह सुख लीन्हें॥

दोहा—ध्यावें शुद्ध स्वरूप नित, उग्र उग्र तप कीन।
निशिवासर आगम पठन, आतम ध्यान लवलीन॥

सकल मुनिन के दर्श कर, अथ आचारज पास।
दै प्रदक्षिणा, तिष्ठ तँह, धर्म श्रवण की आस॥

आचारज से नृपति उचारी, बताव, मो चित संशय भारी।
जाविध दीसि देह की धारो, भोगन रुचि पुन काहे टारो॥
देह सुखाय काह फल पाये, याका भेद समझ ना आये।
यातें संशय वेग मिटावो, चाह दाह को आप बुझावो॥

दोहा–आचारज सुन, प्रश्न यों, कह वच, अमिय समान।
अहो नृपति, भोगत विषय, का सुख लहा, अजान॥
वनिता बेटा, बंधुगण, स्वारथ का संसार।
बिन स्वारथ ऐसे तजत, जिम घृत माखि निसार॥

स्वप्न तुल्य, क्षणभङ्गुर माया, सुरधनु सदृश अथिरपन पाया।
हस्ति कर्णसम, चपल अपारा, कदली थंभ समान असारा॥
अशुचि देह, अतिही घिनकारी, मलहि स्रवै, तामें किय यारी।
होंय अपार रोग तन मांही, मिलती साता, इकक्षण नांही॥

दोहा–मनमतंग सेवै विषय, अहनिशि केलि रचाय।
सम्यक अंकुश के बिना, जित चाहै तित जाय॥
यातें रत्नत्रय भजहु, याबिन सुखी न होय।
विषय कषायन मँह रमें, दुख ही दुख को जोय॥

अमिय समान वचन गुरु बोले, हिय कपाट द्रुत नृपके खोले।
प्रमुदित हो नृप गिरा उचारी, धन्य सुगुरु तुम महिमा भारी॥

जगत जीव हैं अंध समाना, वस्तु स्वरूप नांहि पहिचाना।
भ्रमत अनादि मोह ना जीते, नरभव पाय, जात हैं रीते॥

दोहा—हेगुरु, परम दयाल हो, दिया सत्य उपदेश।
तारो मोकों, हे प्रभो, अब दुख रहै न लेश॥
योंसुन गुरुने द्रुत कहा, दैगम्बर पद धार।
रत्नत्रय हियमँह भजहु, येही तारनहार॥

योंसुन नृपने दीक्षा लीन्ही, परिग्रह ममता द्रुत तज दीन्ही।
उदित मुदित हू संयम धारे, आत्म स्वरूप अटल विस्तारे॥
बहु विरक्त हो दीक्षा लीन्हें, भव, तन, भोग ममत तज दीन्हें।
यथायोग्य लिय व्रत नर नारी, सबनें अपनी गती सुधारी॥

दोहा—सर्व परिग्रह छांड़ कर, लीन्हें चारित पंथ।
निज स्वरूपमँह, थिर भये, शिवरमणी के कंथ॥
उदित मुदित मुनि विहरते, सम्मेदाचल जांय।
मारग की भूलन भई, महा विपिनमँह आय॥

जो इन तात, मित्रने मारो, तिहि से बदला मुदित निकारो।
जन्मा वहू भिल्लगृह मांही, आरत रौद्र तजै ये नांही॥
उदित मुदित मुनि यानें देखे, लखतइ इनकों अरिसम लेखे।
रिसधर मारन इन्हें विचारी, गयो लैन गृह फरसा भारी॥

दोहा—यों लख याकी अति रिपहिं, अवधिग्ज्ञान विचार।
जाना, ये वसुभूति जिय, पूरब बैर चितार॥

आवेगा अब हनन को, मुदित, उदित से बोल।
यातें समता धारकें, तिष्ठो होव अडोल॥

हमने समता अति आराधी, परीच्य समय, न बनें विराधी।
आत्म स्वाद रस हियमँह चाखें, क्रोध कषाय हृदय से नाखें॥
जगमँह क्रोध महा दुखदाई, ता नाशन, रुचि संयम आई।
मुदित मुनी, उदितहिं समझाया, ताने अचल भाव, दर्शाया॥

दोहा—याविध दृढ़ दोउ होय कर, अचल ध्यान दोउ कीन।
निरख भीलपति दुहुन को, चितमँह ममता लीन॥
मनें कीन्ह वाको तबहिं, हनवत लिये बचाय।
भील न कछु भी कर सको, मुनिवर पुण्य, सहाय॥

सुन रघुपति, यों केवल वानी, वेग प्रश्न याविध से ठानी।
काह भीलपति उन्हें बचाये, याका हेतु श्रवण हम चाये॥
तबहिं केवली ध्वनी उचारी, यत्त नाम इक पुर था भारी।
सुख अरु कर्षक थे दोउ भाई, इक पक्षी की जान बचाई॥

दोहा—समय पाय पक्षी मुओ, हुवो भीलपति आय।
उदित मुदित, वे अवतरे, यातें इन्हें बचाय॥
जो रच्चै है जासको, वह रच्चै है ताहि।
जो हन लेवें जासको, वह हन लेवै वाहि॥

इननें पहिले वाहि छुड़ाये, यातें वानें इन्हें बचाये।
एक, एकका भक्षक जानो, एक, एकका रक्षक मानो॥

पाप, पुण्यका ठाठ कहाया, जसकिय जाने, तस फलपाया ।
याविध जगकी रीति कहाई. यातें पापतजो दुखदाई ॥

दोहा–उदित मुदित दोनों मुनी, सुखयुत यात्रा कीन ।
रत्नत्रय आराध कर, जन्म स्वर्गमँह लीन ॥
भील कुयोनन मँह भ्रमत, अग्निकेतु सुर होय ।
उदित मुदित सुर भोग सुख, स्वर्गवास चय दोय ॥

पुर अरिष्ट, प्रियव्व्रत राया, कनकप्रभा, पद्मावति जाया ।
पद्मावति ने द्वय सुत जाये, उदित मुदित के जीव कहाये ॥
रत्न, विचित रथ नाम जिन्हों के, सुख से बीतै काल तिन्हों के ।
कनकप्रभा थी दूजी रानी, ह्वै सुत अनुधर, याके मानी ॥

दोहा–यही जीव वसुभूति का, धरके वहु पर्याय ।
अब पुन से ये मनुज ह्व, उदित मुदित सँग पाय ॥
ह्वै विरकत, नृप प्रियव्व्रत, वैभव सुतनहिं देय ।
आप जाय अनशन धरो, तन तज, सुरपद लेय ॥

इक नृप की, श्री सुता कहाये, ताको परणि रत्नरथ लाये ।
थी अनुधर को, याकी आसा, परणि रत्नरथ, हुई निरासा ॥
पूर्व वैर तें, रिस अति बाढ़ी, तिय निमित्त अब अति ह्वै गाढ़ी ।
अनुधर ने तसु पुरहिं उजाड़ो, तबहिं रत्नरथ दल ले चाढ़ो ॥

दोहा–रत्न, विचित मिल भ्रात दोउ, युद्ध तास से कीन ।
ताको जीत, निकास दिय, छुड़ाय वैभव लीन ॥

कोपित ह्वै अनुचर तबहि, धारा तप अज्ञान।
जटा जूट शिर पर धरै, कंपे काय सुख मान॥

रत्न, विचित पुन दोनों भाई, लीन्ही दीक्षा, जिय सुखदाई।
समाधि मरण अंत मँह कीन्हें, जाय स्वर्ग मँह सुरपद लीन्हें॥
तँहतें चय पुन नरभव पाये, क्षेमंकर के पुत्र कहाये।
देशकुलभूषण ह्वै नामा, गुरु ढिग सौंप, पठन तसु धामा॥

दोहा-लघुवयमँह पढ़ने गये, विद्या अरु गुरु ज्ञान।
अन्य कुटुम से विज्ञ ना, को, का ना पहिचान॥
सीखीं सब विद्या सुखद, सुन हर्षित ह्वै तात।
गुरु को बहुतक दान दिय, की, सुत आगम बात॥

गुरु हर्षित ह्वै आज्ञा दीन्हें, होवे परिणय, दोउ सुन लीन्हें।
कहें भृत्य जो लेने आये, बहु कन्या, तुम्र तात बुलाये॥
हरखे यों सुन दोऊ भाई, किन कन्यन सँग होय सगाई।
यों हिल मिल हम दोऊ चाले, संगे विरद वखानन वाले॥

दोहा-बहिन झरोखे बैठकें, हम दोहुन को देख।
हम दोऊ ही तिहिं निरख, मांग आपनी लेख॥
कुटुम न जानें हम दुहू, ये तो बहिन कहाय।
कैसे करत कुभाव हम, याका भेद न पाय॥

मांग आपनी जब चित धारे, तब दोहुन ने भाव बिगारे।
ज्येष्ठ चहे मैं परणों याको, लघु चाहे मैं परणों याको॥

यदि वह परणें, तदि मैं मारों, वा सोचे मैं ताहि विदारों।
यों कुभाव दोहुन हिय छाये, प्रतीघात के भाव समाये॥

दोहा-ताहि समय वन्दीजनन, कीन्हें विरद उचार।
बहिन झरोखे से लखें, दुहुन भ्रात सुकुमार॥
दुहू भ्रात तसु बहिन ये, चिरजीवें जग मांहि।
पितु क्षेमंकर, मां विमल, इन सम सुखिया नांहि॥

सुन हम, वन्दीजनन उचारे, ह्वै तव शून्य शरीर हमारे।
हम अज्ञानी काविध सोचें, भगिनी प्रति ही कुभाव रोचें॥
यों चिन्तत ही विराग छाये, बहुतक सब कह, राग न भाये।
भव, तन, भोग उदासी छाई, द्रुत से त्यंजन चित्तमँह आई॥

दोहा-भये दिगम्बर गुरु निकट, त्याग परिग्रह कीन।
केश लोंचकर, द्रुत हुये, आतम ध्यान लवलीन॥
विद्या सिद्ध भई तबहि, नभचारिणि सुखकार।
किय बिहार तीर्थादि मँह, वंदे जिन आगार॥

पिता शोकवश प्राण गमाया, गरुणेन्द्रहि सुर पद को पाया।
याहि सभामँह वहू विराजे, श्रवणत केवलि-ध्वनि सुख छाजे॥
अब तापस का कथन सुनावें, किम कुभाव रच, दुखको पावें।
भरमाके, बहु शिष्य बनाये, नगर कौमुदी नृप ढिग आये॥

दोहा-नृपने आडम्बर लखो, चितमँह श्रद्धा लाय।
नृत्यकारिणी नृपति की, रूप सुगुण समुदाय॥

साधु ढिंग इक समय पै, सम्यक व्रत गहलीन।
यातें नृपढिग भेष की, अति ही निन्दा कीन॥

नृप को याके वच न सुहाये, याको अति ही डांट बताये।
तूं, तपसी की निन्दा ठानें, दुरगति के दुख वृथा विसानें॥
यों सुन नृप से यह उचारी, अज्ञानिन की किरिया सारी।
विरथा, जप, तप, भेष रचाये, ज्ञान शून्य, ना सत्य लहाये॥

दोहा-यों सुन चितमँह कुपित ह्वै, द्रुत बोले नरनाथ।
बिन देखे निन्दा करे, कहां हुआ तुअ साथ॥
यों सुन, बोली विनय युत, धीरज मनमँह लाव।
होय विदित कछु दिनन मँह, वृथा काह रिसयाव॥

नृत्यकारिणी गृहमँह आई, सीख देय पुत्रिहिं पहुँचाई।
पहुँची तापस आश्रम मांही, यासम रूप जगतमँह नांही॥
आङ्ग उपाङ्ग अनूप सुहाये, काम वेदना ज्योति जगाये।
लखि यों तापस, लहि अकुलाई, ये है कौन, कहां से आई॥

दोहा-आय ढिगें कामुक तपी, पूछत प्रेम दिखाय।
किम विचरे, एकाकिनी, क्यों मम आश्रम आय॥
विहँस वदन बोली यह, सुनहु स्वामि, मम बात।
गृह से माय निकास दिय, करन आइ आघात॥

यदि अब आप कृपा हो जावै, तो सार्थक मम जीवन पावे।
काहे जियहि विघात करूं मैं, वन तापसिनी संग रहूं मैं॥

तन मन से मैं करहों सेवा, दया करहु द्रुत, हे गुरु देवा।
धर्म अर्थ अरु काम सुमुक्ती, सब मिल, जो करुँ, मैं तुअ भक्ती॥

दोहा—सुन तपसी याविध वयन, प्रेम मगन मन होय।
विहँस वदन बोलत भयो, मोसम धन्य न कोय॥
मम किरपा कैसे कहै, तुअ किरपा की चाह।
यों कह हाथ पसारवै, उठी काम की दाह॥

यों लख, यानें वयन उचारो, कन्या पर किम हाथ पसारो।
यदी आपकी किरपा पाई, चलहु ढिगै है, मोरी माई॥
सम्मति ले, जो चाहो कीजो, मेरो जनम सफल कर दीजो।
यों कह, दिठि कटाक्ष दै मारी, मनहु विजय हो गई हमारी॥

दोहा—नयन बाण मनु काम शर, लागो तापस अंग।
ह्वै कामातुर चल पड़ो, निशिमँह कन्या संग॥
अति आतुर आयो तबहिं, नृत्यकारिणी पास।
विसरो सुध बुध, विकल चित, प्रिया मिलन, हिय आस॥

नृत्यकारिणी ढिग मँह आके, गिरा पगन मँह, शीस झुकाके।
कहै वयन, हियमँह अकुलाके, अतिहि दीनता, तिहिं दर्शाके॥
निज कन्या, मोकों दै डारो, मेरी नैया पार उतारो।
अति ही सेवा करहों याकी, आशिष देहों, मुझे दया की॥

दोहा—नृत्यकारिणी सुन वयन, अरु लख अति अकुलाय।
विहँस कहे, यासे वयन, सुनहु तापसी राय॥

अपनाई कन्या तुमहु, कन्या भाग्य अमुल्य।
धर्म अर्थ कामहु सधे, पावे सौख्य अतुल्य॥

पै इक बात, सुनहु प्रभुमोरी, आशा पूर्ण करों तव तोरी।
परिणय की इक रीति निभावें, बंधन कर, पुन काज रचावें॥
निशा मांहि बंधन स्वीकारो, व्याह देवँगी, होय सकारो।
यों कह, नृत्यकारिणी देखे, कार्य सिद्धि की आशा लेखे॥

दोहा—जाहि काम विषधर डसत, करै अधमतर पाप।
अहनिशि करै कुचेष्ट अति, सहै घोर संताप॥
जीत सकत या काम को, जे निर्मोही जीव।
वही स्वर्ग अपवर्ग के, भोगत सौख्य सदीव॥

चाह दाह, मुखकलि मुरझाई, यातें विवश रीति सुरझाई।
बँधा तापसी, जबरन आके, दिखाय नृपको प्रातहि लाके।'
लखा नृपति ने अचरज लीन्हा, अति धिक्कारा, ताको दीन्हा।
द्रुतही पुरसे ताहि निकासा, कुगुरुन तप अब विरथा भासा॥

दोहा—नृत्यकारिणी से कहै, मुदित होय नरनाथ।
धन्य तिहारी बुद्धि है, गहे सत्य का साथ॥
निपट भूल मेरी हुती, तूंने दई मिटाय।
मुझे चाव अब दर्श की, निज सद्‌गुरुहि बताय॥

नृत्यकारिणी गुरु ढिग लाई, शिर नय, गुरु को विनया राई।
धर्म स्वरूप मुझे दर्शावो, निज वचनामृत शीघ्र पियावो॥

यों सुन गुरु ने गिरा उचारी, सुनहु अमिय हिय वरषा भारी।
सप्त तत्त्व, षट द्रव्य बताये, भेदाभेदा, प्रभेद दिखाये॥

दोहा—पंचपाप दुखदा लखे, तिनमँह मुख्य कुशील।
याको वश करवो कठिन, विनवश, होय न शील॥
नर, खग, सुर, तिर्यंच हू, याके वशी कहाय।
जीतै जो कोउ मोह को, वह निरमूल नशाय॥

सुनत नृपति, हिय श्रद्धा धारी, देव शास्त्र गुरु, महिमा भारी।
हिय मँह समझा अमृत पाये, निधि अनुपम लहि, यों हरषाये॥
आज सत्य को, पाया आके, धारी श्रद्धा, हिय हरषाके।
वृथा मनुज भव अबतक खोया, सत्य धर्म को, कबहुँ न जोया॥

दोहा—तिरस्कार लह तापसी, किय हिय आरत ध्यान।
मरो, कुयोनन मँह भ्रम्यो, तिहिं दुख लहा महान॥
समय पाय नरभव लहा, पुन तापस व्रत लीन्ह।
मरके ज्योतिषि देव हो, अजहु सत्य ना चीन्ह॥

अनंतवीरज केवलज्ञानी, सुनी ज्योतिषी तिनकी वानी।
केवलि से यों पृच्छै कोई, बताव, तुमसम अब को होई॥
तब केवलि की ध्वनी उचारै, देशरुकुलभूषण पद धारै।
सुनत ज्योतिषी अवधि विचारो, वे हैं पूरव अरी, चितारो॥

दोहा—ना होवें ये केवली, यातें द्रुत ढिग आयें।
कीन्ह घोर उपसर्ग को, पूर्ण करन चित चाय॥

तुमको, हर, बलभद्र लख, अतिशय पुण्यी जान।
भागा द्रुतसे वह, तबहिं, उपजा केवलज्ञान॥

हो तुम, हममम चरमशरीरी, अब तुम भव की हुई अखीरी।
यों राघव से ध्वनी उचारी, सुन सब सुर, नर हरषभारी॥
कहगरुणेन्द्र, रामढिग आके, यांचो सो घ्, हिय हरषाके।
पुत्रन का उपसर्ग मिटाया, महउपकार कीन्ह सुखदाया॥

दोहा–सुन यों वच गरुणेन्द्र का, राघव ताहि उचार।
विपति परें, तब आइयो, जबहम तुम्हें चितार॥
दिया 'वचन' गरुणेन्द्र ने, हमने कीन्हीं सार।
आऊं निश्चय चिन्ततहिं, याद 'वचन' का राख॥
जगमँह पुण्य प्रधान है, शिवमँह आत्मप्रधान।
"नायक" रमत स्वरूप मँह, पावें पद निरवान॥

इति एकविंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः

अथ रामनिवास तें पर्वत रामगिरि कहलाया ताका वर्णन

—वीर छंद—

राघव तें, विनवत नृप बोलें, चलहु हमारे पुर, हे नाथ।
कर सेवा सौभाग्य मनावें, यों कह सबने नायो माथ॥
पै राघव ने, कहा सबों से, यँहसे, चित्त जान ना चाय।
देखहु, छाय रही अति शोभा, षट ऋतु के फल फूल लहाय॥

दोहा—दिग दिगन्त सोहै अधिक, तरु मँह फल रहे झूम।
गुन्जें अलिगन तरुन पै, अतिहि मँचावें धूम॥
पुष्पन की शोभा घनी, दिशा सुगंधित होंय।
कुन्जें पत्नी प्रसन चित, केलि करें सुख जोंय॥

आम्र मौर लख कोयल बोले, मीठे वयन उचरती डोलै।
चहुँदिशि छाइ अतिहि हरियाली, मनहु प्रकृति अनुपम रसवाली॥
तासे सब दिशि सुखयुत भासै, मन ना चाहै चलन यहां सै।
अमियसमान राम वच बोले, पीय नृपति सब समझ अमोले॥

दोहा—सेवें सबनृप विविध विध, सबविध दें आराम।
शयनासन मञ्जुल सुखद, लायँ रामगिरि धाम॥
फल मेवा पकवान बहु, भांति भांति के लायँ।
करें समर्पण प्रेम युत, राघव को अपनायँ॥

मन्डप मञ्च सुवेश सुहावें, मोतिनि झालर द्युति छिटकावें।
रत्नन की तँह तोरण सोहें, ध्वजा फहरतीं मनको मोहें॥
वादित्रन ध्वनि चहुँदिशि छाई, गीत नृत्य की ध्वनी समाई।
जिन भवननि की पंकति सोहे, निरख निरख मन भव्यन मोहे॥

दोहा—श्री जिन छवि अनुपम निरख, प्रमुदें सब नर नार।
झलकें आत्म स्वरूप तँह, दरपण की उनहार॥
लहें भविक अतिशय विमल, स्वात्म शुद्ध चिद्रूप।
जिमि अनन्तगुण लह प्रभू, तिमि सम, है मम रूप॥

याविध धर्म ध्वजा फहराये, रामगिरी पर्वत कहलाये।
रामनिमित से, है सुखदानी, गुण यश वर्णत, लह सुख प्रानी॥
अनुपम छविय राम की सोहे, संग अनुज लखण मन मोहे।
सिय की शोभा कहिय न जावें, अतिशय पुण्य महात्म्य दिखावें॥

दोहा—इकदिन राघव ने कहा, सुनहु लखण मम वीर।
यद्यपि कीरत विस्तरी, चहुँदिश मँह गम्भीर॥
अति सेवा नृपगण करत, तउ मम मन अकुलाय।
यँहपै सुखयुत ठहरवो, अब ना मुझे सुहाय॥

भोग रोग सम मैंने जाने, तजन चहों, तउ ये लिपटाने।
जिमि कोऊ को बंधन गेरें, तिमि ये मोकों, पुन पुन घेरें॥
पूरव भवमँह कर्म कमाये, फल ताका याभव मँह पाये।
अबें शुभाशुभ भाव रचावें, ताहि फलहिं भविष्यमँह पावें॥

दोहा–बीते दिन, मिलबो कठिन, नदहिं वेग सम जाय।
जिमि शिशु, यौवनपन लहै, पुन वृद्धापन पाय॥
यातें संयम भाव ही, इक जिय को सुख देत।
भव्य सदा ध्यावें इसे, मोक्ष पावने हेत॥

यातें वेग यहां तें चालो, निज कर्त्तव पै दृष्टी डालो।
नद करनारव के ढिग जाके, रहें तहां पै थान बनाके॥
तँहपै दण्डक वन कहलाया, उदधि तीर भी निकट सुहाया।
भूमिज गम्य तहां पै नांही, वाही थान रुचै मन मांही॥

दोहा–सुन लक्ष्मण ने यों वयन, सविनय किय स्वीकार।
जो आज्ञा करहो प्रभो, वही होय निरधार॥
यों कह चाले तुरत ही, राम लखण सिय सोय।
सब नृप अति शोकित हुये, वर्ज सकें ना कोय॥

सबहिं नृपति मिल चरण पखाले, राम लखण सिय चले उताले।
इन्द्र सारिखे भोगहिं भोगें, अहनिशि नूतन मिल पुन योगें॥
बहुतक नृपति इन्हें पछियाये, संगै चालें, मनें कराये।
मनहु लोक निधि कोई छीनें, सर्वस जावै, हुये विहीनें॥

दोहा–लौटाये पुन यतन कर, उन चित शोक समाय।
कही, जगत की रीति यह, इक आवै, इक जाय॥
यही मोह दुखदाय है, तजहु वेग या मोह।
मोह तजत, ना भासही, योगरु तथा विछोह॥

भजहु आपनो रूप जो, गुण अनन्त की खान।
"नायक" रमत स्वरूप मँह, करं सदा कल्यान ॥

* इति द्वयविंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः *

अथ श्रीराम, लक्ष्मण, सीता ने दण्डक वनमँह, युगल चारणमुनि को आहारदान दिया, ताहि समय जटायु गृद्ध पक्षी का सम्मिलन वर्णन

—वीर छंद—

गवनत राम लखण अरु सीता, निरखत देश अनेक सुहाय।
अनुपम प्रेम परस्पर दर्शत, नाना विध से केलि रचाय ॥
सघन विपिनमँह प्रवेश कीन्हें, निर्भय, ताहि उलंघन कीन्ह।
पुन रेवा तट इक गिरिवर सोहे, ताहि लखत चितमँह सुख लीन्ह ॥

दोहा–विहँस वदन बोली सिये, सुन प्रीतम मम बात।
जल क्रीड़न को चित चहे, आज तिहारे साथ ॥
सुनत राम विहँसे तबे, तसु अनुमोदन कीन्ह।
केलि करें, राघव सिये, हरि शचि, उपमा लीन्ह ॥

कर जल केलि निकसके आये, असन पान सामग्री लाये।
वासन मृतिका के रच लीन्हें, रचे एक से एक नवीने ॥
व्यञ्जन रुचियुत, रुचिर बनाये, अतिथिदानके भाव समाये।
आवश्यकमँह दान बताया, यह गृहस्थ कर्तव्य कहाया ॥

दोहा–आहारन का लख समय, द्वारापेक्षण कीन्ह।
भाग्य उदय चारण युगल, आवत सिय लख लीन्ह॥
दिपै तेज, मनु रवि उदय, शशि सम सोहै कान्ति।
युग मुनि, कह हर्षित, हुई, राम लखण को भ्रान्ति॥

कँह हैं युग मुनि, राम उचारो, धन्य प्रिये, है भाग्य तिहारो।
यों संशय युत गिरा उचारी, सिय ने कहि, दिठि आय हमारी॥
लखहु लखहु, वे आवत देखो, लख राघव हू, हिय सुख लेखो।
मनहु लोक निधि, ढिगमँह आई, हरख हिये सिय, राघव, भाई॥

दोहा–मासहिं उपवासे मुनी, ईर्यापथ से आय।
पड़गाहे सबमिल तबहिं, हर्ष कहो ना जाय॥
अवधिज्ञान धारी मुनी, गुप्त सुगुप्त, सुनाम।
वनचर्याहि प्रतिज्ञ लिय, आये इनके धाम॥

नवधा भक्ति मुनिन की कीन्हें, आदर सहित असन को दीन्हें।
विपन गाय का दुग्ध पिवाये, घृत मिष्टान्नहिं सविध जिमाये॥
किसमिस, पिस्ता, दाख, छुहारे, आम्र जायफल आदिक सारे।
निरन्तराय असन मुनि पाये, राम लखण सिय हिय हरषाये॥

दोहा–देवन पंचाश्चर्य किय, रत्न, पुष्प बरसाय।
सुरदुंदभि जय जय ध्वनी, सुगन्ध समीर बहाय॥
तबहिं गृद्ध तरुपै हुतो, ताने मुनि लख लीन्ह।
जातिस्मरण हुवो तभी, पश्चातपहिं कीन्ह॥

मैंने, संयम, तप ना धारो, उलट रुपित ह्वै तपिन विदारो।
तजो धर्म; ह्वै पापाचारी, मोह अंध ह्वै, सुगति बिगारी ॥
पापी जीव मुझे भरमाये, मित्र हुते, रिपुसम बन आये।
पूरब चिन्तत अतिदुख भासे, साधु शरण गहुँ सुखप्रद, यासे ॥

दोहा-यों चिन्तत ही हिय विषें, गहों शरण सुखदाय।
शोक भाव तज, हर्षयुत, गिरा चरण मँह आय ॥
तन विशाल के पतत ही, हुवा शब्द घनघोर।
वज्रपात मानो भयो, फैला रव चहुँओर ॥

योंलख सिय हियमँह अकुलाई, वनचर हूकें, ह्वै भयदाई।
राम लखण, याको अति मोचें, ना भागा, तब चितमँह सोचें ॥
काह शरण ये, नांही छांड़ा, कितना हमनें याको ताड़ा।
परसत चरण लहा या लाभा, दिपी दीप्ति तन, जिमि मणि आभा

दोहा-स्वर्ण प्रभा सम पंख ह्वै, चोंच विद्रुमहि रूप।
लखकर सब हर्षित हुये, ह्वै या रूप अनूप ॥
देख प्रभा, निज गात की, ये नाचा, जिमिमोर।
क्षण पुलकै क्षण सकुचतन, लिय मुख ओर न छोर ॥

शिर नय तिष्ट मुनिन पगमांही, परमभक्तियुत छांड़ै नांही।
बारबार, चरणहिं शिरनाये, यों लख सबहिन अचरज पाये ॥
गृद्ध योनि नित मांसाहारी, रघुवर ने पुन गिरा उचारी।
बताव नाथ, कहा ह्वै याके, काहे गिरा चरण मँह आके ॥

दोहा—अनुपम छवि, याकी हुई, रत्ननसम हुइ कान्ति।
पूर्व रूप विडरूप मिट, हंम रूप की, भ्रान्ति ॥
यह, वह ही या अन्य है, ऐसो संशय होय।
या संशय मेंटो प्रभू, अवश रहस है कोय ॥

यों सुन, मुनिने अवधि विचारी, पुन इनको, या भांति उचारी।
याका कथन सुनहु रघुराई, दण्डक देश महा सुखदाई ॥
धनधान्यादिक पूरित जानो, कर्णकुन्ड तँह नगर बखानो।
दण्डक नृपति तहां बलचंडा, दिपै तेज मनु रविहि प्रचंडा ॥

दोहा—पै कुकर्म मँह रत रहै, मृपा धर्म अपनाय।
रानी दंडि उपासिनी, नृप हू सेव रचाय ॥
घृतहिं अर्थि जलमथनतिमि, धर्म विमुख सुख मान।
चाह दाह विनशे बिना, लहै न सुःख, अजान ॥

इक दिन नृप, पुरबाहर आके, मुनि को ध्यानारूढ़ लखाके।
मृतकसर्पको, गलमँह डारो, कुकृत का फल नांहि विचारो ॥
मुनि, उपसर्ग लखत ही, काया, की निश्चल, दृढ़ ध्यान जमाया।
मित्र शत्रु कें, इकसम जाना, रिपु के प्रति भी रोष न ठाना ॥

दोहा—यों नृपने, महअघ कियो, जहर हलाहल पीय।
परम तपस्वी साधु को, महा अवज्ञा कीय ॥
कछुक दिवस बीते जबै, उत्सुक हो चितमांहि।
आया नृप मुनि के ढिगै, लखै सर्प अब नांहि ॥

एक मनुज ढिग बैठा पाके, पूछी तासों, संशय लाके।
मुनिगल सर्प कौन ने काढ़ा, निश्चय करन कौतुकहु बाढ़ा ॥
अज्ञ नृपति, यों पूछे यासे, सुन वह कुपित होय, कह तासे।
मुनि उपसर्गी, कोय अनारी, नाहक अपनी गती बिगारी ॥

दोहा—मैंहा अधमपन कार्य किय, मैं लख लीन्हा आज।
खेदखिन्न मुनितन लखत, मैं काढ़ो, महराज ॥
महातपस्वी साधु ये, शत्रु मित्र सम जान।
कर कुकृत्य, वह मूढ़ नर, पावे दुःख महान ॥

येतो निष्पृह निज तन मांही, निज करतें अहि काढ़ें नांही।
चाहे प्रान भले ही जावें, तबहिं, तपस्वी पद को पावें ॥
इनसम हितकर जगमँह नांही, पर उपकारी, रम निज मांही।
यों सविनय वह, नृपसे बोला, सारा रहस सर्प का खोला ॥

दोहा—लखे नृपति, मुनिमुख छविय, शान्ति, क्षमा भंडार।
नाया मस्तक भक्तियुत, हियमँह श्रद्धा धार ॥
सुनी रानि वृत्तांत यह, मुनि श्रद्धा, नृप लेय।
चिन्ते काविध छल करूं, नृप श्रद्धा तज देय ॥

छल करने, मनमांहि विचारी, निज गुरु को या भांति उचारी।
मुनि सम अपना भेष बनावो, मम ढिग आय कुकर्म रचावो ॥
लोभी गुरू लालची चेला, होय नरक मँह टेलमटेला।
याहि कहावत सारू कीन्हा, मुनि का भेष बना द्रुत लीन्हा ॥

दोहा—आया रानी के ढिगहिं, विक्रत चेष्टा कीन्ह ।
कोय जाय नृप सें कही, नृप आके लख लीन्ह ॥
लखत कुचेष्टा रानि प्रति, नृप कोप्या हिय माहि ।
सोचै, नाशों मुनिन कों, शेष रखों इक नांहि ॥

रानी, भृत्य क्रोध भड़काये, अति ही, दमारसम प्रजलाये ।
धिक धिक उचरें, सेवक सारे, मुनि की निन्दा अतिहि उचारे ॥
रिस अग्नी मँह, इन्धन डारें, जासे नृप, मुनिगणहिं सँहारें ।
याविध, नृप हिय, अति रिस आई, मुनिहिं हतन की चितमँह छाई ॥

दोहा—दीन्ही आज्ञा द्रुत नृपति, पकड़ मुनिन को लाय ।
पेलो घानी मँह सबहिं, शेष न इक रह जाय ॥
यों आज्ञा सुन अनुचरन, आज्ञा सारू कीन्ह ।
आचारज युत लाय सब, पेल घानि मँह दीन्ह ॥

मुनिहिं पकड़ घानी मँह डारें, पुन ऊपर से वयन उचारें ।
कीन कुचेष्टा, शंके नांही, तसुफल भोगो घानी मांही ॥
ज्यों ज्यों पिरें तिमहि तिम हर्पें, दुख लह जनता, ज्यों ज्यों दर्शें ।
हाहाकार करें नर नारी, रुदनें हियमँह शोकें भारी ॥

दोहा—मुनि प्रसन्न, शान्तिहिं धरें, ध्यान अग्नि प्रज्वलायँ ।
समझें, कर्म विनाशवे, नृप उपकार रचायँ ॥
ज्यों पिरवें, त्यों गाढ़ हों, निज स्वरूप के मांहि ।
क्षमा परीक्षा, देंय सब, किंचित रोपें नांहि ॥

चिर अभ्यासत, क्षमा कमाई, तास परीक्षन, बारी आई ।
लेन परीक्षा, नृपहिं भिजायो, प्रमाण पत्र हमहु नें पायो ॥
यों चिन्तत, मुनिगण ह्वै गाढ़, अति उत्साह हृदयमँह बाढ़े ।
धन्य भावना, मुनिपद मांही, जगमँह वरणि सकै कोउ नांही ॥

दोहा—अल्प समय के दीक्षिते, इकमुनि, जिन लघु काय ।
पुरमँह प्रविशे थे तबहिं, आहारनहित आय ॥
इनको लख इक नर कहै, मैं विनवत हों नाथ ।
बहुड़ जाव तुम बेगही, मुनिहिं पेल्ह, नरनाथ ॥

आचारज युत सबमुनि पेरे, मुनिको खोजें, पुन नृप चेरे ।
यातें वेग बहुड़कें जावो, वनमँह जाके ध्यान लगावो ॥
लघुवय, संयम साधन काया, नृपने सकलसंघ पिरवाया ।
यातें विनय मान ल्यो मोरी, शीस नाय कहुँ, दुइ कर जोरी ॥

दोहा—नाश संघ का सुन मुनिहिं, शून्य हुआ सब गात ।
हुआ चूर हिरदय मनो, लगा वज्र आघात ॥
संघ मुनिन का नश गयो, यों चिन्तत, ह्वै क्लेश ।
क्रोध अग्नि हियमँह भभक, नाशन को सब देश ॥

गुफा समान हृदय गतिधारी, निकसा क्रोध सिंह अतिभारी ।
प्रलय मँचावन, दशदिशि मांही, कोई जीव बचै अब नांही ॥
नयनन मांहि अरुणता छाई, ओंठ डसे पुन भ्रकुटि चढ़ाई ।
स्वेद बिन्दु सब तनमँह छाया, मानहु काल ग्रसन को आया ॥

दोहा–वाम अंग तें द्रुत निकस, अग्निपूतला श्याम ।
तवहिं भयंकर ज्वाल उठ, जलै सभी धन धाम ॥
मनहु ज्वाल नभकोग्रसै, छाया तम घनघोर ।
द्वादश योजन लों जलै, दिखै ओर ना छोर ॥

नृप अरु राणी गुरु हू सारे, भृत्यहु जिन नृप क्रोध उवारे ।
वचा न कोई चतु अठ कोसा, याविध मुनिमन अतिही रोसा ॥
मुनिपद तो निज पर को तारै, रूठै, निज पर जिया सँहारै ।
यातें भूल कभी मत कीजे, निजपर हितकर शिक्षा लीजे ॥

दोहा–क्रोध करै यदि संयमी, स्वपर अहित, दुखदाय ।
लहै असंयम भावसम, शिव मारग विनशाय ॥
नरक निगोदन दुख लहै, जाका ओर न छोर ।
जोलह, या पुन केवली, लखें ज्ञान के जोर ॥

कोय भूल, निज को दुखदेवै, कहूं कथंचित दोउ दुख सेवै ।
कोय भूल ऐसी कहलावै, जासे देश दुखी हो जावै ॥
यातें भूल करो मत कोई, भूली रानी, नृपमति खोई ।
भूले पुन मुनि हू हिय मांही, क्रोध करन ये पद है नांही ॥

दोहा–नृप दण्डक के निमित से, विनशा ये सव देश ।
यातें दण्डकवन कहत, त्रण ना उपजो लेश ॥
कछुक काल वीता जवै, मुनि का हुआ विहार ।
फलफूलादिक उपजे, हुईं सुख वस्तु अपार ॥

दण्डक नृपति कुगति के मांही, भ्रमाकला सुखपाया नांही।
दैवयोग लहि, गृध्र पर्याया, हमको लखकें सुमरन आया॥
कुभाव कीन्हें याविध मैंने, तासें बहु दुख पायेतैंनें।
यों चिन्तयत ही शरणें आया, काललब्धि से सुयोग पाया॥

दोहा-कहां हमारा आगमन, पड़गाहन तुम कीन्ह।
कहां गृद्ध याथल विषें, भ्रमन करत लख लीन्ह॥
निमित पाय गृध के हिये, उपजा ज्ञान सुबोध।
मुनि चरणन शरणा गहूं, मिटहै ज्ञान अबोध॥

यों मुनि, राघव प्रती उचारी, सुन, लिय कौतुक, हरषे भारी।
अमिय वयनमुनि बोले वासे, भय मतकर, अब कम्पे कासे॥
निश्चय, तूं तो भव्य कहाया, पापकर्मका अंत लहाया।
होनी जाकी जैसी होवें, निश्चय तैसी बुद्धी जोवें॥

दोहा-होनहार बलवन्त अति, अब मत रुदनों, भाय।
देखी, ज्यों भगवन्त नें, ताविध ही तो पाय॥
कँह रामानुज सीय युत, पड़गाहन चित देय।
हमहिं प्रतिज्ञा यों करी, वनचर्या ही लेय॥

कोऊ श्रावक वनमँह आके, दें आहारहि, हिय हरषाके।
भैक्ष्य शुद्धि, वनचर्या जानो, अतिथिदान अति सुखकर मानो॥
निज वैराग, हमहुं बतलावें, पक्षी हिय संबोधन लावें।
यों मुनि, रामलखण से बोले, निज वैराग रहस को खोले॥

दोहा—नगर वनारसि अचल नृप, गिर देवीतसु रानि ।
मुनि त्रिगुप्त लख दंपती, पड़गाहे सुख मानि ॥
निरंतराय आहार दै, पुन विठाय गृह मांहि ।
कीन्ह प्रश्न रानी तवहिं, सुत उपजै या नांहि ॥

सुनत प्रश्न मुनि, अवधिविचारे, युगल पुत्र शुभ होंय, उचारे ।
यों सुन रानी, हिय हरषाई, पुन हम उपजे दोऊ भाई ॥
मुनि त्रिगुप्त, सुत होंय उचारो, ता प्रसाद, रख नाम हमारो ।
गुप्त सुगुप्तरु, नाम रखाया, मुनिहिं कहे से जन्म लहाया ॥

दोहा—संबंधित अवकथन सुन, गंधवतीपुर जान ।
सोम पुरोहित नृप तना, तसु सुत द्वय गुणखान ॥
अग्नीकेत सुकेत का, किय परिणय, पितु माय ।
सुकेत हियमँह चिन्तवै, तिया, महा दुखदाय ॥

वह आके, उत्पात मँचावै, दुहु भ्रातन को जुदा करावै ।
जवहम, तसु मां वाप छुड़ाये, तब, वहहू, किम कमी लगाये ॥
यातें तिय को द्रुतही त्यागें, आतम हितमँह क्यों ना लागें ।
यों विचार, द्रुत गुरुढिग आके, लीन्हा मुनिपद, हिय हरषाके ॥

दोहा—ज्येष्ठ भ्रात ने जब लखा, लघु भ्राता तप कीन्ह ।
तब येहू ह्वै विरत चित, कुतप भार धर लीन्ह ॥
सुन सुकेत मुनि, भृत कुतप, सम्यक धर्म उलंघ ।
आज्ञा यांची गुरुहिं से, बोधन उठी उमंग ॥

सुनगुरु कहि, यों शिक्षण देहो, तबही, वाकों वश कर लेहो।
अवधिज्ञान से गुरू विचारे, पुन तसु बोधन रीति उचारे॥
वाढिग जाय इमहिं संबोधो, हो मक्र समरथ, वाहिय शोधो।
तुम यह हो, वाको समझावें, तोसों बहु, विवाद मँचावे॥

दोहा–आवै इक कन्या तबहिं, त्रय सखियन के लार।
गंगा तट पै, ता समय, वासे यों उचार॥
कहो शुभाशुभ, होन जो, कः कन्या का होय।
सुन वह, विलखत है, कहै, बता सकै ना कोय॥

तब तुम उचरो, मैं सब जानों, सुना चहै, तो तुझे बखानों।
सुन वह, उचरन को हठ ठानें, कहै, सत्य हो, तो हम मानें॥
तब तुम, तिहिं, या भांति उचारो, जाव परीक्षो, वयन हमारो।
प्रवर सेठ की, सुता कहाई, जन्मत, रुचिरा नाम लहाई॥

दोहा–प्रवर सुता रुचिरा मुई, छेरी जन्म लहाय।
पुन न्याली, भेड़ी हुई, पुन भैंसी हो जाय॥
भैंसी मर, कन्या हुई, प्रवर मामगृह आय।
ताहि परणिबो चह प्रवर, पूरब ज्ञान न पाय॥

यह सुन वह इ कौतुक धारे, निश्चय करने, वेग सिधारे।
तुम वच का फल, सांचा पावै, तबही वाचा तेरे आवै॥
योंसुन गुरुवच, सुकेत चाला, आया आता दिगै उताला।
जाविध गुरु ने झुती उचारी, ताविध सबही, हुइ तिहिं सारी॥

दोहा—अग्निकेतु जाके तबहिं, कन्या को बतलाय।
तूं रुचिरा थी पूर्व मँह, जन्म प्रभव से पाय॥
या भवमँह, परिणय करै, पूर्व तात के संग।
सुनकन्या सुमरन करै, पूरव ज्ञान तुरंत॥

जातिस्मरण उपज हिय मांही, पूरव लखो, छिपो अब नांही।
आके मंडप, मांहि उचारी, होवै मोसें, अनरथ भारी॥
पूरव सुता प्रवर की थी मैं, रुचिरा नामा, किन्तु मुई मैं।
पुन हुइ छेरी, भेड़ी न्याली, पुन भैंसी से, या गति पाली॥

दोहा—धिक जिय, या संसार मँह, भ्रमण करै, सुध नांहि।
नाते होंय परस्परहिं, संबंधी, जिय मांहि॥
तात, मात, भ्राता, वहिन, दादा, दादी सोय।
मामा, मामी आदि बहु, जगमँह नाते होय॥

यातें, अब भव पाश विदारों, अपना परिणय साज निवारों।
आर्या के ढिग, द्रुत से आई, दीक्षा लीन्ही हिय सुखदाई॥
अग्निकेतु भी, मुनिपद धारो, लखा सत्य, जो भ्रात उचारो।
पुन निज कथन, रामसें बोले, हमहू अद्भुत, हियपट खोले॥

दोहा—सुना, लखा, कन्या कथन, हिय विरागता लीन्ह।
राग तजें, अनरथ नशै, यों निश्चय, मन कीन्ह॥
गुरू ढिगै, दीक्षा धरी, तप तपते वन मांहि।
कानतार चर्या करें, डरें कर्म से नांहि॥

कर्मन को अनुरूप बनावें, मोह शत्रु पै, विजय उपावें।
हर्ष, विषाद तजें मन मांही, लाभ, अलाभ, गिनें अब नांही॥
शत्रु, मित्र मँह समता मानें, कंचन कांच बराबर जानें।
यों मुनि ने, सब कथन उचारो, श्रद्धत पत्ती, हिये सुख धारो॥

दोहा–पत्ती को मुनि ने तबहिं, निशि भोजन का त्याग।
अभक्ष्य त्याग कराय दिय, व्रत मांही चित पाग॥
सामायिक, तिहुं काल मँह, शक्ति मारुँ उपवास।
देव शास्त्र गुरु श्रद्धहो, करो मोक्ष की आस॥

याविध पत्ती को व्रत दीन्हा, वानें हर्षित हो, गह लीन्हा।
राम लखण सिय प्रती उचारे, सुनहु भव्य, यों वचन हमारे॥
साधर्मी की रक्षा कीजो, दुठ जीवन से, बचाय लीजो।
यातें याको निज ढिग राखो, वात्सल्य परमामृत चाखो॥

दोहा–सुन मुनिका हितकर वयन, हरषे, सब हिय मांहि।
शिर नयकर स्वीकृत कियो, "वचन" उलंघो नांहि॥
हर्षित ह्वै, पुन सब कह्यो, पत्ती गती सुधार।
हमकुन अतिशय पुण्य लिय, पुन पुन श्रुती उचार॥

राम लखण सिय, श्रुती उचारी, निःकारण जगजिय हितकारी।
अगम भवोदधि, पार न पायें, धर्म जहाज प्रभू तुम लायें॥
आप तरत, परकों भी तारो, सबकी नैया पार उतारो।
यों कह, शिरनय, बारम्बारा, गमन कीन्ह ऋषि नभ के द्वारा।

दोहा—हियमँह सब हर्षित हुये, हुआ मुनिन सत्संग।
धर्म लाभ अति ही लहा, हर्ष समाय न अंग॥
तीन हुते, चौथा मिला, और हमारे साथ।
भक्तिवन्त धर्मातमा, गहा मोक्ष का पाथ॥
मत्तमतंग तबहिं इक आया, महा उपद्रव तहां मँचाया।
यों लख, लक्ष्मण वेग सिधाये, वशकर तापै चढ़कें आये॥
लखत राम सिय, हिय हरपाकें, दी आशिष, हियमँह सुख पाकें।
सुन लक्ष्मण हू हिय हरपाया, राम, सियहिं, निज मस्तक नाया॥
दोहा—जे जे व्रत पक्षी लिये, यथाशक्ति सब पाल।
निज स्वरूपमँह नित रमें, लखै, जगहिं, जंजाल॥
चितमँह, धर्म प्रसाद तें, रखै विमल परिणाम।
कृत सामायिक तिहुँ समय, चहै मोक्ष सुख धाम॥
नाम जटायू, राम उचारो, सुन सिय लक्ष्मण, हिय सुखधारो
रुचिर खिलोना, सबने पाया, लख धर्मातम अतिहिं सुहाया॥
प्रासुक असन पान नित लेवै, आवश्यकमँह चूक न देवै।
राम लखण सिय, संगति पाई, ह्वै प्रसन्न नित केलि मँचाई॥
दोहा—राम लखण, गावें मधुर, सिय वादित्र बजाय।
करै जटायू नृत्य अति, प्रभु की भक्ति दृढ़ाय॥
सुखसें काल वितावते, अतिहि पुण्य हैं साथ।
"नायक" धर्म प्रभावतें, मिलत मोक्ष का पाथ॥

॥ इति त्रयोविंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः ॥

अथ श्रीराम, लक्ष्मण और जनकदुलारी का दण्डकवनवास वर्णन

—वीर छंद—

फैली महिमा पात्र दान की, चहुँदिशिमँह कीरत प्रसराय।
हेम रत्न मय रथ इक साजें, मोतिन माल मनोहर छाय॥
तामँह थान जुदे निरमापित, शयनाशनयुत, दिपै विमान।
जुपे चार गजराज सुशोभित, तापर बैठे सुरन समान॥

दोहा–राघव लखण, जटायु युत, जनक दुलारी साथ।
निर्भय सिंह समान हिय, विचरें वन के पाथ॥
हिये न शंका व्यापहीं, धीर, वीर बलवन्त।
प्रेम परस्पर है घनों, रवि सम तेज दिपन्त॥

सुन्दर सरिता नीर बहाये, फल स्वादिष्ट विपिनमँह पाये।
भांति भांति के वृक्ष सुहानें, छह ऋतु के फल फूल लखानें॥
सब सामग्री, लखि सुखकारी, रामलखणप्रिय, विपिन विहारी।
मंद सुगंध समीर सुहाये, सुमन वेलि के मन्डप छाये॥

दोहा–दिखती शोभा अति घनी, प्रकृति मनोरम होय।
महत पुरुष का आगमन, लख हरषें सब कोय॥
अपना भाग्य सराहवें, काम इन्हों के आय।
सेवा अपनी सुख, मनहु, स्वागत अधिक रचाय॥

भँवर समूह अधिक गुंजारें, मनु पाहुनगति नाद उचारें।
विविध भांति के पत्ती सोहें, कूंजे अति ही, मन को मोहें॥
कलरव तिनका अतिहि सुहाये, मानो स्वागत वयन उचाये।
भला हुआ, इत नाथ पधारे, यातें हमहू हरषे सारे॥

दोहा–झरै नीर निर्झर सुखद, स्वाद अमिय सम पाय।
अमिय सलिलयुत सर भरे, पद्म समूह सुहाय॥
विकसत नयन सुहावने, मनु श्रद्धांजलि देंय।
रविसम आये, हैं प्रभो, हमहु वलैयां लेंय॥

तरु फल झूम, मनो शिर नाये, स्वागत धोक विनय सरसाये।
कोयल शब्द, श्रवण सुखदाई, करत मयूर नृत्य अधिकाई॥
यों दण्डकवन सुखद सुहाये, सीता, राम लखण इत आये।
परम पुनीत भाग्य है मेरो, विचरत, महनर, हमउर हेरो॥

दोहा–राम लखण सिय, सुखित हिय, प्रमुदें वारम्बार।
सुभग जटायू हर्ष युत, नर्तें अपरम्पार॥
तरुगण से लिपटीं लता, लख सिय, इम कहि वैन।
लखहु नाथ, या विटप मनु, गृहस्थ सम, सुख दैन॥

धर्म विटप ढिग, दया लताई, विनयवन्त हिय, सुवुध सुहाई।
विनयवती वनिता सुखकारी, ताविध लता सरलता धारी॥
तरु पिय से लिपटी मन मोहै, करती विनय प्रिया ज्यों सोहै।
सुभग महल मनु मन्डप छाये, ज्योतिष मंडल, दीप दिपाये॥

दोहा–यों उपमत वर्णन करैं, मुदित विदेही होय।
श्रवणत राघव हर्ष लिय, वरणि सकै ना कोय॥
मुलकत राघव हू उचर, सुनहु प्रिये सुखदाय।
मदयुत गज विचरैं यहां, सुखदा केलि रचाय।

ज्ञानहस्ति, सम्यकता पावै, विराग वनमँह केलि रचावै।
जिमि मयूर लख, अहिगण भाजें, धर्म सूर्य लख, मिथ्या लाजें॥
सिंह क्रूरता हू तज दीन्हे, मनो मोह समता गह लीन्हे।
मंद सुगंध बयार सुहाई, जिनवच, भव्यन है सुखदाई॥

दोहा–सरित कौंचवा अमिय जल, है यह विश्व प्रसिद्ध।
जिन वचनामृत पीय तिम, भव्य जीव हो सिद्ध॥
दण्डक गिरवर मनहरन, सर्व निधिन को धाम।
अतुल निधीं परगट भईं, लख तुअ सेवा काम॥

सुन रघुवर की मंजुल वानी, सुनत सिये हिय नांहि अघानी।
तबहिं पीय से इमहिं उचारी, गिर से, अधिक गुणन भंडारी॥
जिमि गुण गण, पिय तुअ हिय मोहै, तिमि गिरवर ना मनकोमोहै।
सुगुण सुगंध, नाथ प्रगटाई, तिमि गिरमँह ना, कबहुं लखाई॥

दोहा–यों उपमा, उपमेय का, है विलास दुहुं ओर।
वचनामृत रस पियहि इमि, जिमनिशि, चंद्र चकोर॥
हियहि प्रमोदें दंपती, कहन कौन समरथ्य।
परख जोंहरी कर सकत, लह चिन्तामणि हथ्थ॥

निरख मनोहर सरित सुहाई, जल क्रीड़न, लक्ष्मण चित चाई।
अनुमोदे राघव हरषाके, सुखलह, सिययुतकेलि मँचाके॥
सबमिल प्रमुदत, किय जलक्रीड़ा, बरणि सकै को उनकी लीला।
पुनःनिकस सिय, कहुँ छिपजाये, खोज लगावन, राघव आये।

दोहा—रामरु सिय की केलि लख, मोहित ह्वै तिरयंच।
चित्र लिखे सम सुथिर ह्वै, हिलें डुलें ना रंच॥
सिय अलाप मंजुल सुस्वर, रघुवर ताल बजाय।
नृत्य जटायू किय सरस, हियमँह अति सुखपाय॥

राम, लखण सें गिरा उचारी, गिरि ने अति सुन्दरता धारी।
यातें मेरा, यों मन चावै, यँहपै सुन्दर नगर बसावै॥
पुन तुम, माय लैन को जावो, लाय उन्हों का खेद मिटावो।
या तुम रहो, लैन मैं जाऊं, लाय माय हिय, सुखउपजाऊं॥

दोहा—सुन लक्ष्मण आदेश इमि, शीस नाय यों बोल।
हुइ आज्ञा ना टर सकै, निधी समान अमोल॥
प्रमुदत, गवनन सज लखण, यों लख, राम उचाय।
धन्य भ्रात तेरी विनय, मुख से कही ना जाय॥

ग्रीष्म पूर्ण हो पावस आई, ना गवनो, या ऋतुमँह भाई।
पावस बीते, पुन तुम जावो; मैं तो एक सुभाव रखावो॥
तूं तो द्रुत ही, कीन्ह तियारी, मुख से निकसन हुई हमारी।
अति परशंसो, राघव याको, गद्गद होवै, सुन हिय वाको॥

दोहा—प्रमुदत लक्ष्मण विनय युत, राघव को शिर नाय।
जिमि गुरु ढिग, नय शिष्य तिमि, लक्ष्मणहू नय जाय॥
राघव से बोले लखण, जो आयस हो नाथ।
वही होय, निश्चय, प्रभो, यों कह, नायो माथ॥
पुण्यवन्त को सब सुलभ, जङ्गल मङ्गल रूप।
रत्नत्रय "नायक" भजें, बनें मोक्षपुर भूप॥

॥ इति चतुर्विंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः ॥

अंतिम मंगलाचरण अरिहंत भगवान की स्तुति पूजन का माहात्म्य

शास्त्रोक्त पूजन महोत्सव, सुरपती चक्री करें।
हम सारिखे लघु पुरुष कैसे, यथा विध पूजन रचें॥
धन ज्ञानक्रिया रहित नजानें, रीति पूजन नाथ जी।
हम भक्तिवश तुम्र चरण आगे, जोड़ लीने हाथ जी॥
दुखहरन मंगलकरन आशा, भरन पूजन जिन सही।
यह चित्त में श्रद्धान मेरे, भक्ति है स्वयमेव ही॥
तुम सारिखे दातार पाये, काज लघु यांचों कहां।
मुझ आप सम, कर लेव स्वामी, यही इक वांछा महा॥
संसार भववन विकट मांही, वसु कर्म मिल आतापियो।
तिस दाह तें आकुलित चिरतें, शांति थल कहुँ ना लियो॥
तुम मिले शांति स्वरूप शांती, करन समरथ जगपती।
वसु कर्म मेरे शांति करद्यो, शान्तिमय पंचमगती॥
जबलों नहीं शिव लहों तबलो, देव यह धन पावना।
सत्संग शुद्धाचरण श्रुत, अभ्यास आतम भावना॥

तुम बिन अनन्तानन्त काल, गयो रुलत जग जाल में ।
अब शरण आयो नाथ युगकर, जोड़ नावत भाल में ॥

दोहा—कर प्रमाण के मापतें, गगन नपै किहिं भन्त ।
त्यों तुम गुण वर्णन करत, कवि पावें ना अन्त ॥
टुक अवलोकन प्रभु भयो, हुवा धर्म अनुराग ।
इक टक देखूं नित्य तो, बढ़ै ज्ञान वैराग ॥
द्वितियकांड वर्णन कियो, पढ़ै सुनै सब कोय ।
जिमि अमूल्य निधि हिय लसत, लखत सुखी सब होय ॥
पर को कह सुनिये सबहिं, है व्यवहारी बान ।
"नायक" रमत स्वरूप मँह, निश्चय सुखद महान ॥

॥ द्वितीयकांड समाप्त ॥

* शुभम् भूयात् *